'गांधी माला"—नं० ३

विद्यार्थियों को संदेश

मो० क० गांधी
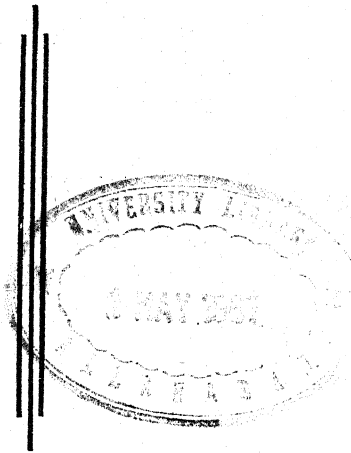
सम्पादक—प्रकाशक
आनन्द हिंगोरानी

भूमिका

'गांधी-माला' की पहली पुस्तक––'विद्यार्थियों से'––में जो कुछ साल पहले प्रकाशित की गयी थी, भारत के नौजवानों के नाम गांधीजी का संदेश दिया गया था। वह पुस्तक विद्यार्थियों के 'धर्म' का सुंदर और प्रेरणाप्रद वृत्तांत मानी गयी थी और विद्यार्थी-समुदाय तथा आम जनता के बीच इतनी लोकप्रिय सिद्ध हुई थी कि चार संस्करण हो जाने के बाद भी उसकी मांग पूरी न की जा सकी। हमारे देश की पत्र-पत्रिकाओं ने इसे न केवल 'एक ऊँची श्रेणी की पुस्तक' और 'बहुत ही उत्तम, उपयोगी और काम का संकलन' बतलाया, बल्कि 'दैवी संदेश' और 'भारतीय विद्यार्थियों की बाइबिल' तक कह डाला।

वर्तमान संस्करण में पुराने संस्करण की खास-खास सारी विशेषतायें तो हैं ही, कुछ और भी हैं। सामग्री को काफ़ी काट-छांट दिया गया है जिससे कि जेबी आकार की पुस्तक में ज़्यादा से ज़्यादा बातें दे दी जा सकें। फिर भी विनम्रता के साथ मेरा यह निवेदन है कि यह काट-छांट खूब समझ-बूझकर किया गया है जिससे कि क्रम या विचारों का तारतम्य या भाषा का संपूर्ण प्रवाह कहीं भंग न हो।

जो भी हो, इस पुस्तक की सामग्री के बारे में कुछ कहना धृष्टता ही होगी। विद्यार्थी-जीवन का एक भी ऐसा पक्ष नहीं है जिसपर इस संग्रह में विचार न संकलित हों। इसमें मित्रवत् सलाह, पितृवत् मार्ग-दर्शन और गुरुवत्

झिड़कियों के साथ-साथ ऊंचे से ऊंचे दर्जे की नैतिक सीख मिलेगी।

मुझे इस बात में जरा भी संदेह नहीं कि सही तरीक़ा अपनाया जाय तो न केवल भारत, बर्मा और श्रीलंका के, बल्कि बहुत अंशों में सारी दुनिया के विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक 'दार्शनिक, दोस्त और रहनुमा' साबित होगी। यह उन लोगों को जीवन की उलझनों और परेशानियों को स्थिर आत्म विश्वास और अडिग उत्साह के साथ झेलने की शक्ति देगी और उन्हें सच्चे चरित्र के ऐसे व्यक्तियों के रूप में ढालेगी जो अपने भीतर की बुराइयों से जमकर लड़ने में पीछे नहीं हटेंगे। फिर तो वे सैकड़ों बार असफल हों तो क्या? क्योंकि गांधीजी ने कहा है: "सुख तो संघर्ष में है। नतीजा तो ईश्वर की कृपा से मिलता है।"

मूल अंग्रेज़ी पुस्तक का यह हिंदी अनुवाद प्रथम बार प्रकाशित किया जाता है। इसके लिये मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती गंगा हिंगोरानी का अति आभारी हूं जो उन्होंने कष्ट उठा कर हिंदी अनुवाद तथा प्रकाशन में सहायता की है। उनके सहयोग के बिना यह हिंदी पुस्तक इतनी शीघ्र प्रकाशित नहीं हो सकती थी।

आनन्द हिंगोरानी

७ एडमान्स्टन रोड,
इलाहाबाद
१६ अप्रैल, १९६२

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ

: १ :

भारत की तात्कालिक आवश्यकता

मेरी यात्राओं में सब जगह मुझसे भारत की तात्कालिक आवश्यकता के बारे में पूछा गया है। और शायद सबसे अच्छा यही है कि मैं आज वही उत्तर दोहरा दूं, जो मैंने अन्यत्र दिया है। साधारण-तौर पर यह कहा जा सकता है कि उचित धार्मिक भावना सबसे बड़ी और तात्कालिक आवश्यकता है, परन्तु मैं जानता हूं कि यह जवाब इतना सामान्य है कि उससे किसी को सन्तोष नहीं हो सकता। और यह उत्तर सर्वकाल के लिये सही है। इसलिये मैं जो कहना चाहता हूं, वह यह है कि हमारे भीतर धार्मिक भावना सोयी हुई होने के कारण हम सदा भय की स्थिति में जी रहे हैं। हमें भौतिक और आध्यात्मिक दोनों सत्ताओं का डर है। हमें अपने धर्मगुरुओं और पंडितों के सामने अपने दिल की बात कह डालने का साहस नहीं होता। हम पार्थिव सत्ताधारियों से भयभीत रहते हैं। मुझे यक़ीन है कि ऐसा करके हम उनकी और अपनी कुसेवा करते हैं। न हमारे आध्यात्मिक गुरु और न हमारे राजनीतिक शासक ही संभवतः यह चाह सकते हैं कि हम उनसे सचाई छिपायें।

मेरी नम्र सम्मति में निर्भयता पहली अनिवार्य वस्तु है, जिसके बिना हम कोई स्थायी या वास्त-

विक सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। यह गुण धार्मिक चेतना के बिना अप्राप्य है। हम ईश्वर से डरें तो हमें मनुष्य का डर नहीं रहेगा। अगर हम यह अच्छी तरह समझ लें कि हमारे भीतर कोई दिव्य शक्ति है, जो हमारे हर विचार और कृत्य की साक्षी है और सत्य मार्ग पर हमारी रक्षा और मार्गदर्शन करती है, तो यह स्पष्ट है कि हमें ईश्वर के सिवा पृथ्वीतल पर और किसी का डर नहीं रहेगा। उस राजाओं के राजा के प्रति स्वामि-भक्ति मुख्य है, और सब प्रकार की स्वामिभक्ति उसके बाद आती है; और वह पहले प्रकार की स्वामिभक्ति ही दूसरे प्रकार की स्वामिभक्ति को अर्थ और आधार देती है।

स्वदेशी के बिना मुक्ति नहीं

और जब निर्भयता की इस भावना को हम काफ़ी विकसित कर लेंगे, तो हम देखेंगे कि सच्चे 'स्वदेशी' के बिना, उस 'स्वदेशी' के बिना नहीं; जिसे सुविधा से टाल नहीं दिया जा सकता है, हमारे लिए मुक्ति सम्भव नहीं है। 'स्वदेशी' का मेरे लिये एक और भी गहरा अर्थ है। मैं तो यह चाहूंगा कि हम लोग इसका अपने धार्मिक, राज-नीतिक और आर्थिक जीवन में प्रयोग करें। इस-लिये मौक़ा पड़ने पर 'स्वदेशी' कपड़े पहन लेने तक ही यह सीमित नहीं है। यह तो हमें हमेशा करना है, और वह भी ईर्ष्या या बदले की भावना से नहीं, बल्कि इसलिये कि अपने प्रिय देश के लिये यह हमारा कर्त्तव्य है। यह सच है कि यदि हम विदेशी

कपड़े पहनते हैं तो हम 'स्वदेशी' भावना के प्रति विश्वासघात करते हैं, किन्तु यदि हम विदेशी शैली के सिले कपड़े पहनते हैं तो भी हमारा कृत्य उसी दर्जे का हुआ। निश्चय ही हमारे पहनावे की शैली का हमारे वातावरण से कुछ सम्बन्ध होता ही है। सुन्दरता और आराम की दृष्टि से यह पतलून और जाकिट से कहीं अधिक ऊँचे दर्जे का पहनावा है। अगर कोई हिन्दुस्तानी पैंट के ऊपर से ढीली-ढाली कमीज़ पहन ले और नेक-टाई तो न पहने लेकिन वास्कट चढ़ा लिये हो जो पीछे के तरफ़ उड़ रहा हो, तो यह दृश्य देखने में बहुत अच्छा न मालूम पड़ेगा।[1]

धर्म में स्वदेशी

धर्म के क्षेत्र में 'स्वदेशी' हमें शानदार अतीत को समझने और उसे वर्तमान पीढ़ी में फिर से

---

[1] "मेरा विश्वास है कि यूरोपीय पहनावे की नक़ल करने की हमारी आदत हमारे पतन, दासता और हमारी कमजोरी का लक्षण है और हम एक ऐसे पहनावे की उपेक्षा करके जो भारतीय जलवायु के सबसे अधिक अनुकूल है, समूची धरती पर सादगी, कलात्मकता और सस्तेपन की दृष्टि से अद्वितीय है और जो स्वास्थ्य-सम्बन्धी आवश्यकताओं की भी पूर्ति करता है, एक राष्ट्रीय पाप कर रहे हैं। अगर झूठे अभिमान और गौरव सम्बन्धी झूठी धारणाओं की ही बात न होती तो यहां के अंग्रेजों ने बहुत ही पहले भारतीय पहनावा अपना लिया होता।"

—स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स ऑफ़ म० गांधी : पृ० ३९३

उतारने की शिक्षा देता है। यूरोप में जो अस्त-व्यस्तता फैली हुई है, उससे मालूम होता है कि आधुनिक सभ्यता बुराई और अन्धकार की शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है, जब कि प्राचीन अर्थात् भारतीय सभ्यता के मूल में दैवी शक्ति मौजूद थी। आधुनिक सभ्यता मुख्यत: भौतिकवादी है, जब कि हमारी सभ्यता मुख्यत: आध्यात्मिक रही है। आधुनिक सभ्यता पदार्थ के नियमों की खोज में लगी है और मनुष्य की प्रतिभा को उत्पादन के साधनों और विनाश के हथियारों के ईजाद या खोज में लगा रही है; हमारी सभ्यता मुख्यत: आध्यात्मिक नियमों की खोज में लगी रही है।

हमारे शास्त्रों ने स्पष्ट कहा है कि सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह का सम्यक् पालन शुद्ध जीवन के लिये अनिवार्य है और उसके बिना आत्मज्ञान असंभव है। हमारी सभ्यता हमें साहसपूर्ण विश्वास के साथ बताती है कि अहिंसा के गुण का ठीक और पूरी तरह विकास कर लेने पर सारी दुनिया हमारे पैरों में आ जाती है, क्योंकि अहिंसा क्रियात्मक रूप में शुद्ध प्रेम और दया ही होती है[1] इस आविष्कार के कर्ता ने इतने अधिक दृष्टान्त दिये हैं कि उनसे विश्वास जम जाता

---

[1] "हमारे धर्म का आधार अहिंसा है, जो क्रियात्मक रूप में प्रेम के सिवा कुछ नहीं है। और प्रेम भी न सिर्फ़ अपने पड़ोसियों के प्रति, न केवल अपने मित्रों के प्रति, बल्कि उनके प्रति भी, जो आपके शत्रु हो सकते हैं।"

—*स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स ऑफ़ म० गांधी : पृ० ३१०*

उतारने की शिक्षा देता है। यूरोप में जो अस्त-व्यस्तता फैली हुई है, उससे मालूम होता है कि आधुनिक सभ्यता बुराई और अन्धकार की शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है, जब कि प्राचीन अर्थात् भारतीय सभ्यता के मूल में दैवी शक्ति मौजूद थी। आधुनिक सभ्यता मुख्यत: भौतिकवादी है, जब कि हमारी सभ्यता मुख्यत: आध्यात्मिक रही है। आधुनिक सभ्यता पदार्थ के नियमों की खोज में लगी है और मनुष्य की प्रतिभा को उत्पादन के साधनों और विनाश के हथियारों के ईजाद या खोज में लगा रही है; हमारी सभ्यता मुख्यत: आध्यात्मिक नियमों की खोज में लगी रही है।

हमारे शास्त्रों ने स्पष्ट कहा है कि सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह का सम्यक् पालन शुद्ध जीवन के लिये अनिवार्य है और उसके बिना आत्मज्ञान असंभव है। हमारी सभ्यता हमें साहसपूर्ण विश्वास के साथ बताती है कि अहिंसा के गुण का ठीक और पूरी तरह विकास कर लेने पर सारी दुनिया हमारे पैरों में आ जाती है, क्योंकि अहिंसा क्रियात्मक रूप में शुद्ध प्रेम और दया ही होती है[1] इस आविष्कार के कर्ता ने इतने अधिक दृष्टान्त दिये हैं कि उनसे विश्वास जम जाता

---

[1] "हमारे धर्म का आधार अहिंसा है, जो क्रियात्मक रूप में प्रेम के सिवा कुछ नहीं है। और प्रेम भी न सिर्फ़ अपने पड़ोसियों के प्रति, न केवल अपने मित्रों के प्रति, बल्कि उनके प्रति भी, जो आपके शत्रु हो सकते हैं।"

—स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स ऑफ़ म० गांधी : पृ० ३१०

है। यह याद रखना चाहिये कि अहिंसा का पालन करने में अनुकूल उत्तर पाने की भावना रखने की ज़रूरत नहीं है, यद्यपि यह सच है कि अंतिम स्थितियों में इसका अनुकूल उत्तर मिलता ही है। हममें से बहुतों का विश्वास है, और मैं उनमें से एक हूं, कि अपनी सभ्यता द्वारा संसार को देने के लिए हमारे पास एक भव्य संदेश है।

—स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स ऑफ़ महात्मा गांधी: पृ० ३१०

: २ :

विद्यार्थियों को सलाह

मद्रास ने तो मेरी धर्मपत्नी के तथा स्वयं मेरे बखान में अंग्रेज़ी के लगभग सभी विशेषणों को ख़र्च कर डाला है, और अगर कहीं मुझसे इस विषय में मेरी राय पूछ ली जाय कि अनुग्रह, प्यार और चिन्ता के ज़रिये मेरा दम कहीं घोंटा जा सकता है क्या, तो मुझे कहना पड़ेगा : जी हां, मद्रास में।

आपने उस सुन्दर राष्ट्रगीत (वन्देमातरम्) का गायन किया है, जिसे सुनते ही हम सब खड़े हो गये थे। भारत माता के लिए कवि से जितने विशेषणों का प्रयोग सम्भव हो पाया, उसने उन सब का प्रयोग किया है। उसने भारत माता का वर्णन करते हुए कहा है कि वह सुहासिनी, सुमधुर-भाषिणी, सुरभित, सर्व-शक्तिमयी, सारी सचाई

और अच्छाई से भरी हुई, सत्यस्वरूपा है। उसकी धरती पर दूध और मधु की धारायें बहती हैं। पके खेत, फल और धान्य से वह ढंकी है और उसपर एक ऐसी मानव-जाति बसी है, हमारे पास जिसके स्वर्ण युग का चित्र मौजूद है। उसने हमारे सामने एक ऐसे देश की तस्वीर खींची है, जो अपने भौतिक बल या अधिकार से नहीं, आत्मबल से सारी दुनिया को, सारी मानवता को अपने वश में कर लेगी। क्या हम उस गीत को गा सकते हैं? मैं स्वयं से पूछता हूं: "क्या मैं इस गीत को सुन कर किस अधिकार से उठ खड़ा हो सकता हूं?" इसमें कोई सन्देह नहीं कि कवि ने एक ऐसी तस्वीर हमारे सामने रखी है; जिसे हमें साकार करना है, जिसके शब्द हमारे लिये एक आदर्श के सन्देश मात्र हैं, और यह तुम्हारा कार्य है, जो कि देश की आशा है, कि हमारी मातृभूमि के वर्णन में कवि द्वारा प्रयोग किये गये एक-एक शब्द को सच कर दिखायें। आज मैं अनुभव करता हूं कि हमारी मातृभूमि के वर्णन में विशेषण ज़्यादातर ठीक नहीं बैठते, और यह तो तुम पर और मुझ पर निर्भर है कि मातृ-भूमि के हक़ में कवि ने जो दावे किये हैं, उन्हें सच कर दिखायें।

शिक्षा का ध्येय

मद्रास के विद्यार्थियों और भारत-भर के विद्यार्थियों से मैं यह पूछता हूं कि क्या तुम ऐसी शिक्षा पा रहे हो, जो तुम्हें इस आदर्श को प्राप्त करने के योग्य बनायेगी और तुम्हारे उत्तम गुणों को

बाहर लायेगी ? या यह शिक्षा ऐसी है जो सरकारी कर्मचारी या व्यापारी दफ़्तरों के क्लार्क बनाने वाला कारख़ाना बन गई है ? जो शिक्षा तुम्हें मिल रही है क्या उसका उद्देश्य[1] सरकारी विभागों या दूसरे महकमों में केवल नौकरी पाना है ? यदि तुम्हारी शिक्षा का यही ध्येय है, अगर तुमने अपने सामने यही लक्ष्य रख छोड़ा है, तो मेरा ख़याल है और मुझे अन्देशा है कि कवि[2] ने जिस आदर्श की कल्पना की है, वह पूरा नहीं होगा। जैसा कि तुमने मुझे शायद कहते सुना हो या पढ़ा हो, मैं आधुनिक सभ्यता का कट्टर विरोधी हूं। मैं चाहता हूं कि योरप में जो कुछ आज हो रहा है, उसपर नज़र डालो और यदि तुम इस नतीजे पर पहुंच चुके हो कि इस समय योरप आधुनिक सभ्यता क पैरों तले कराह रहा है, तो तुम्हें और तुम्हारे माता-पिता को हमारी मातृभूमि में उस सभ्यता की नक़ल करने से पहले दस बार सोचना पड़ेगा।

मैक्समूलर ने हमें बताया है—हमें अपने ही

---

[1] प्र० :—जब भारत को स्वराज्य मिल जायेगा, तब शिक्षा का आपका क्या ध्येय होगा ?

उ० :—चरित्र-निर्माण। मैं साहस, बल, सदाचार और बड़े लक्ष्य के लिये काम करने में आत्मोत्सर्ग की शक्ति का विकास करने की कोशिश करूंगा। यह साक्षरता से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है; किताबी ज्ञान तो उस बड़े उद्देश्य का एक साधन मात्र है।

—रीमेकर्स ऑफ़ मेनकाइण्ड (१९३२) : पृ० १०४-५

[2] रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

धर्म का अर्थ करने के लिये मैक्समूलर के पास जाने की ज़रूरत नहीं, परन्तु वह कहता है—कि हमारा धर्म 'D-U-T-Y' (कर्तव्य) के चार अक्षरों में समाया हुआ है, न कि 'R-I-G-H-T' (अधिकार) के पांच अक्षरों में। और यदि आप मानते हों कि हमें जो चाहिये सो सब अपने कर्त्तव्य का अधिक अच्छी तरह पालन करने से मिल सकता है, तो सदा अपने कर्त्तव्य का विचार कीजिये; इस ढंग से लड़ते हुये आपको किसी मनुष्य का डर नहीं रहेगा, आप केवल ईश्वर से डरेंगे।

यही सन्देश मेरे गुरु—अगर मैं कह सकूं तो तुम्हारे भी गुरु—गोखले जी ने हमें दिया है।

गोखलेजी का सन्देश

अच्छा, वह सन्देश क्या है ?

. . . . वह सन्देश है देश के राजनीतिक जीवन तथा राजनीतिक संस्थाओं को आध्यात्मिक रूप देने का। हमें तत्काल इस पर अमल करना शुरू कर देना चाहिये। विद्यार्थी लोग राजनीति से दूर नहीं रह सकते। राजनीति उनके लिये उतना ही ज़रूरी है, जितना कि धर्म। राजनीति को धर्म से अलग नहीं किया जा सकता।

संभव है मेरे विचार आपको स्वीकार न हों। फिर भी मैं तो आपको वही चीज़ दे सकता हूं, जो मेरे हृदय की गहराई को हिला रही है। दक्षिण अफ़्रीका के अपने अनुभवों के आधार पर मैं दावा करता हूं कि आपके वे देशवासी, जिन्हें वर्तमान सभ्यता नहीं मिली, पर जिन्हें ऋषियों की की हुई

तपश्चर्या उत्तराधिकार में मिली थी, जो अंग्रेज़ी साहित्य का एक अक्षर भी नहीं जानते थे और जो आधुनिक संस्कृति का ककहरा भी नहीं पढ़े थे, पूरी ऊंचाई तक उठ सके। और जो बात दक्षिण अफ़्रीका में हमारे अशिक्षित और निरक्षर देश-वासियों के लिए संभव थी, वह आज हमारी इस पवित्र भूमि में आपके और मेरे लिये दस गुनी संभव है। भगवान करे आपका और मेरा दोनों का यह सौभाग्य हो !

—स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स ऑफ़ महात्मा गांधी : पृ० ३११

: ३ :

चरित्र-निर्माण की आवश्यकता

मैं अनुभव करता हूँ और अपने सारे सार्वजनिक जीवन में मैंने अनुभव किया है कि जिस चीज़ की हमें या किसी भी राष्ट्र को ज़रूरत है और जिसकी हमें दूसरे राष्ट्रों से ज़्यादा ज़रूरत है, वह है—चरित्र-निर्माण। महान् देशभक्त गोखले जी भी इसी विचार को मानते थे। तुम्हें मालूम ही है, वे अपने बहुत से भाषणों में कहा करते थे कि जब तक हमारी इच्छाओं के पीछे चरित्र का बल न होगा, हम कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं, कुछ भी पाने के योग्य नहीं बन सकते हैं। .... तुम्हें यह भी मालूम है कि वे अक्सर यह कहा करते थे कि हमारी औसत यूरोप के तमाम राष्ट्रों की औसत

से कम है। मुझे यह नहीं मालूम कि जिन्हें मैं अपना राजनीतिक गुरु मानता हूं, उनके इस वक्तव्य के पीछे सचाई का कोई आधार है या नहीं, लेकिन मैं इतना तो विश्वास करता ही हूँ कि जहां तक शिक्षित भारत का सम्बन्ध है, इसको सही साबित करने के लिये बहुत कुछ कहा जा सकता है। ऐसा इसलिये नहीं है कि समाज के हम शिक्षित हिस्से के लोगों ने कोई बहुत बड़ी भूल कर दी है, बल्कि इसलिये कि हम परिस्थितियों के दास रहे हैं।

जीवन का मूल मंत्र

और चाहे जो कुछ हो, मैंने तो यही अपने जीवन का मूल मंत्र मान लिया है कि कोई कितना भी महान् क्यों न हो, उसका किया कोई काम तब तक सच्चे अर्थ में सफल न होगा, जब तक कि उसके पीछे धार्मिक आधार न हो। लेकिन धर्म क्या है? फ़ौरन् यह सवाल पूछा जायेगा। अपने तईं मैं तो इसका यही जवाब दूंगा: वह धर्म नहीं जो दुनिया के सारे धर्मग्रन्थों को पढ़ जाने के बाद हाथ आयेगा; यह असल में बुद्धि से नहीं, भावुक हृदय से धर्म को समझना हुआ। धर्म हमसे बाहर की कोई चीज़ नहीं, बल्कि यह तो एक ऐसी चीज़ है, जिसे हमें अपने शील से ही विकसित करना है। यह हमेशा हमारे भीतर ही होता है, कुछेक के साथ उनकी जानकारी में, कुछेक के साथ अनजाने ही। लेकिन यह मौजूद होता है; और हम अपने भीतर इस धार्मिक चेतना को चाहे बाहरी मदद से जागृत करें या भीतरी प्रयत्न से, चाहे जो भी तरीक़ा

अपनायें, लेकिन अगर हम सही तरीक़े से और ऐसा कुछ करना चाहते हैं, जो हमारे बाद भी रहे तो हमें इसको जागृत करना पड़ेगा।

—स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग ऑफ़ महात्मा गांधी : पृ० ३७७

: ४ :

बनारस महाविद्यालय के छात्रों से

अगर तुम विद्यार्थी लोग मिनटभर के लिये भी यह मान लेते हो कि उस आध्यात्मिक जीवन का प्रचार, जिसके लिये यह देश प्रसिद्ध है और जिसके मामले में इस देश का कोई सानी नहीं है, उपदेश के ज़रिये हो सकता है, तो मेरी बात सच मानो, तुम ग़लती कर रहे हो। तुम सिर्फ़ ज़बान से ही वह सन्देश कभी नहीं दे सकते, जिसे मुझे उम्मीद है, एक दिन भारत सारी दुनिया को देगा। मैं ख़ुद भी भाषणों और व्याख्यानों से ऊब गया हूं, लेकिन मैं तुम्हारे सामने यह सुझाव रखने की हिम्मत करता हूं कि अब हम भाषणबाज़ी का अपना सारा ख़ज़ाना ख़र्च कर चुके हैं, और इतना ही काफ़ी नहीं है कि हमारे कानों को सुख मिले और हमारी आंखों को सुख मिले, बल्कि यह आवश्यक है कि हमारे हृदय को छुआ जाय और हमारे हाथों और पैरों को चलाया-फिराया जाय। हमें यह बतलाया गया है कि यदि भारतीय जीवन की सादगी को बनाये रखना है तो हमारे हाथों और पैरों को

हृदय के साथ मेल में चलना चाहिये। लेकिन यह तो भूमिका के रूप में ही रही।

अपमान और शर्म की बात

हमारे लिये यह गहरे अपमान और शर्म की बात है कि मुझे आज इस पवित्र नगर के इस महा-विद्यालय की छाया में अपने देशवासियों के सामने ऐसी भाषा में बोलना पड़ रहा है, जो मेरे लिये विदेशी है। उनके द्वारा उत्तम विचार प्रगट नहीं किय जा सकते, तो मैं कहूंगा कि हमारा अस्तित्व जितना जल्दी मिट जाय उतना हमारे लिये अच्छा है। क्या कोई ऐसा आदमी है, जो सपने में भी यह ख्याल करता हो कि अंग्रेज़ी कभी भारत की राष्ट्र भाषा हो सकती है? ('कभी नहीं' की आवाज़ें)। देश के मत्थे पर यह आफ़त और बोझ किसलिये? क्षण भर के लिये सोचिये तो कि हमारे लड़कों को हर अंग्रेज़ लड़के के साथ कितनी विषम दौड़ लगानी पड़ती है? मुझे पूना के कुछ प्राध्यापकों से घनिष्ठ बातचीत का सुअवसर मिला था। उन्होंने मुझे यक़ीन दिलाया कि प्रत्येक भारतीय युवक अपने जीवन के कम से कम ६ क़ीमती साल गंवा देता है, क्योंकि वह अंग्रेज़ी भाषा द्वारा अपना ज्ञान प्राप्त करता है। इसका हमारे स्कूल-कालेजों से निकलने वाले छात्रों की संख्या से गुणा कीजिये और फिर ख़ुद ही देख लीजिये कि देश को कितने हज़ार वर्ष की हानि हुई है। हमारे विरुद्ध आरोप यह है कि हममें स्वयं-प्रेरणा से कुछ करने की शक्ति नहीं है। वह कैसे हो सकती है,

यदि हम अपने जीवन के मूल्यवान वर्ष एक विदेशी भाषा पर प्रभुत्व प्राप्त करने में लगा दें? और हम इस प्रयत्न में भी असफल रहते हैं।[1]

अंग्रेज़ी शिक्षा

मैंने लोगों को कहते हुए सुना है कि आख़िर तो अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भारतीय ही देश का नेतृत्व कर रहे हैं, और राष्ट्र के लिये सब कुछ कर रहे हैं। इसके सिवा और हो ही क्या सकता था? हमें एक मात्र अंग्रेज़ी शिक्षा ही मिल रही है। अवश्य ही हमें इसके बदले में कुछ न कुछ कर के दिखाना चाहिये, परन्तु मान लीजिये कि पिछले ५० साल में हमें अपनी मातृभाषाओं द्वारा शिक्षा मिली होती, तो आज हम क्या होते? हमारा भारत आज स्वतंत्र होता, हमारे शिक्षित लोग अपने ही देश में विदेशी बन कर न रहते; परन्तु उनकी वाणी राष्ट्र के हृदय को छूती, वे ग़रीब से ग़रीब लोगों के बीच काम करते होते और पिछले

---

[1] "सच बात तो यह है कि हम अंग्रेज़ी पर कभी पूरा अधिकार नहीं पा सकते; कुछ अपवादों को छोड़ कर ऐसा कर सकना सम्भव नहीं हो पाया है; हम अपनी बातों को अंग्रेज़ी में उतनी स्पष्टता से नहीं कह सकते, जितनी कि अपनी मातृभाषा में। हम बचपन की तमाम, स्मृतियों को भुला देने का साहस भला कैसे कर सकते हैं? लेकिन जब हम विदेशी भाषा में उच्चतर शिक्षा आरंभ करते हैं तो हम ठीक यही बात करते हैं। इससे हमारे जीवन में एक खाई पड़ जाती है, जिसके लिये हमें महंगा और भारी मूल्य चुकाना पड़ेगा।"

—स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स ऑफ़ म० गांधी : पृ० ३८८

५० वर्ष के दौरान में उन्होंने जो कुछ प्राप्त किया, वह राष्ट्र के लिये एक क़ीमती विरासत होती (तालियां)। आज तो हमारे उत्तम विचारों में हमारी पत्नियां तक हिस्सा नहीं ले सकतीं। प्राध्यापक बोस और प्राध्यापक राय को तथा उनकी प्रतिभाशाली खोजों को देखिये। क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि उनकी खोजें जनसाधारण की समान सम्पत्ति नहीं हैं?

—स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स ऑफ़ म० गांधी : पृ० ३१७

: ५ :

एक राष्ट्रीय दुर्भाग्य

अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा का जो अंधविश्वास-पूर्ण सम्मान करना हम सीख गये हैं, उससे स्वयं को और समाज को मुक्त करके हम समाज की सबसे बड़ी सेवा करेंगे। इसी भाषा में हमारे स्कूलों और कॉलेजों में शिक्षा दी जाती है। यह हमारे देश की राष्ट्रभाषा बनती जा रही है। हमारे सब से अच्छे विचार इसी में प्रकट किये जाते हैं। अंग्रेज़ी-शिक्षा को ज़रूरी मानने का हमारा यह विश्वास हमें ग़ुलाम बनाये हुए है। इसने हमें सच्ची राष्ट्रीय सेवा कर सकने में असमर्थ बना दिया है। अगर यह आदत की ही बात न होती तो हमें यह समझने में कठिनाई न होती कि अंग्रेज़ी ही शिक्षा का माध्यम होने के कारण हमारी अपनी

दिमाग़ी दुनिया अलग बन गयी है, हम जन-समूह से अलग हो गये हैं, राष्ट्र के अच्छे से अच्छे दिमाग़ दरबों में बन्द हो गये हैं और जनता हमारे द्वारा प्राप्त किये गये नये विचारों से लाभ नहीं उठा सकी है। हम इन पिछले साठ सालों में जीवन की सचाई को समझने-बूझने की जगह अजूबे शब्दों और उनके उच्चारणों को रटने में लगे रहे हैं। अपने माता-पिता से पायी गयी शिक्षा की नींव पर नयी इमारत खड़ी करने की जगह हमने उस नींव को ही खोद डाला है। इतिहास में ऐसी घटना और कहीं देखने को नहीं मिलती। यह एक राष्ट्रीय दुर्भाग्य है।

राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दी

सब से पहली और सब से बड़ी सामाजिक सेवा हम यह कर सकते हैं कि हम अपनी स्वदेशी भाषाओं को फिर से अपनायें, हिन्दी को राष्ट्रभाषा के स्वाभाविक पद पर फिर से बिठायें, और अपनी सारी प्रान्तीय कार्यवाहियों को अपनी स्वदेशी भाषाओं में तथा राष्ट्रीय कार्यवाहियों को हिन्दी में चलायें। हमें तब तक चैन से नहीं बैठना चाहिये जब तक कि हमारे स्कूल और कॉलेज हमारी देशी भाषाओं में शिक्षा न देने लगें। ज़रूरी तो यह भी नहीं होना चाहिये कि अपने अंग्रेज़ दोस्तों के लिये भी हमें अंग्रेज़ी बोलनी ही पड़े। हर सिविल और फ़ौजी अफ़सर को हिन्दी जाननी ही पड़ती है। अधिकांश अंग्रेज़ व्यापारी हिन्दी इसलिये सीख लेते हैं कि उनके व्यापार के लिये इसकी ज़रूरत

पड़ती है। वह दिन भी जल्दी ही आना चाहिये जबकि हमारे विधान-मण्डल राष्ट्रीय मसलों पर ज़रूरत के अनुसार देशी भाषाओं या हिन्दी में बहस करें। अभी तक तो जनता को उनकी कार्य-वाहियों की कोई जानकारी नहीं रहती आयी है। स्वदेशी भाषा के अखबारों ने इस ख़ुराफ़ात के असर को दूर करने की थोड़ी-सी कोशिश की है, लेकिन यह काम उनकी शक्ति के बाहर था। .....सुसंस्कृत विचारकों के इस पुराने देश में टैगोर या बोस या रॉय जैसे व्यक्तियों का हमारे बीच होना अचम्भे की बात नहीं है। फिर भी दुःख की बात यह है कि ऐसे लोगों की संख्या बहुत ही कम है। मेरा यह विश्वास है कि हमारे शिक्षा प्रणाली के इस गम्भीर दोष के कारण ही हमारे राष्ट्रीय जीवन में यह भारी कमी आ गयी है।

—*दि इन्डियन रिव्यू*

: ६ :

सब से बड़ी बुराई

यह (अंग्रेज़ी) शिक्षा की प्रणाली एक बहुत बड़ी बुराई है। मैं इस प्रणाली को नष्ट करने के लिये अपनी ज़्यादा-से-ज़्यादा शक्ति लगाता हूं। मैं यह नहीं कहता कि हमने इस प्रणाली से अब तक कोई लाभ उठाया है। जो लाभ हुआ भी है, वह इस प्रणाली के कारण नहीं। मान लो कि

अंग्रेज़ यहां न होते तो भी भारत ने दुनिया के दूसरे हिस्सों के साथ-साथ क़दम आगे बढ़ाया ही होता, और अगर यहां अब भी मुग़लों का ही राज्य बना होता तो भी लोग अंग्रेज़ी को उसकी भाषा और साहित्य के लिये पढ़ते। मौजूदा प्रणाली तो हमें अंग्रेज़ी साहित्य का विवेक के साथ प्रयोग करना न सिखा कर गुलाम बना देती है। मेरे दोस्त ने तिलक का, राम मोहन का और मेरा उदाहरण पेश किया था। मुझे तो अलग छोड़ दीजिये, मैं एक बेचारा बौना ठहरा।

तिलक और राममोहन को अगर अंग्रेज़ी ज्ञान की छूत न लग गयी होती तो वे और भी महान् होते। मैं अंग्रज़ी भाषा की अंधोपासना का विरोधी हूं। मैं अंग्रेज़ी शिक्षा से नफ़रत नहीं करता। मैं अंग्रेज़ी भाषा को नष्ट नहीं कर डालना चाहता, बल्कि अंग्रेज़ी को वैसे पढ़ता हूं, जैसे भारत के एक राष्ट्रीय नागरिक को पढ़ना चाहिये। राममोहन और तिलक (मेरी बात अलग रख दीजिये) जनता पर चैतन्य, शंकर, कबीर और नानक के प्रभाव को देखते हुये बौने भर थे। राममोहन और तिलक इन महापुरुषों के सामने बहुत छोटे थे। अकेले शंकर ने जो कर दिया था, वह अंग्रेज़ी बोलने वालों की सारी जमात नहीं कर सकी। मैं और भी उदाहरण दे सकता हूं। क्या गुरु गोविन्दसिंह अंग्रेज़ी शिक्षा की उपज़ थे? क्या एक भी अंग्रेज़ी जानने वाला उन नानक के बराबर रक्खा जा सकता है, जिन्होंने एक ऐसे सम्प्रदाय की स्थापना की थी, जो बहादुरी और त्याग में किसी से घट कर

नहीं ? क्या राममोहन ने दलीपसिंह जैसा एक भी माहिर पैदा किया ? मैं तिलक और राममोहन के प्रति बहुत ही श्रद्धा रखता हूं। मेरा यह विश्वास है कि यदि राममोहन और तिलक ने यह शिक्षा न पायी होती तो चैतन्य की तरह उन्होंने और भी बड़े-बड़े कार्य किये होते। यदि इस जाति को फिर से कभी भी नया जीवन देना है तो यह नया जीवन अंग्रेज़ी शिक्षा द्वारा नहीं दिया जा सकेगा। मैं यह जानता हूं कि हिन्दुस्तानी और संस्कृत न जानने की वजह से मैंने कितने बड़े-बड़े खज़ाने गंवा दिये हैं। मैं आपसे शिक्षा के रोब-दाब पर उसके सही मूल्य को देखते हुए विचार करने को कहता हूं। अंग्रेज़ी शिक्षा ने हमारी साहित्यिक प्रतिभा का हनन कर दिया है, हमारी बुद्धि को जकड़ लिया है और इस शिक्षा के दिये जाने के तरीक़े ने हममें ज़नानापन ला दिया है। हम आज़ादी की धूप तो खाना चाहते हैं, लेकिन हमें ग़ुलाम बनाने वाली प्रणाली हमारे राष्ट्र के पुरुषत्व को नष्ट करती जा रही है।

—यंग इन्डिया १३-४-१९२१

: ७ :

अंग्रेज़ी शिक्षा

यह मेरा निश्चित मत है कि आज की अंग्रेज़ी शिक्षा शिक्षित भारतीयों को निर्बल और शक्तिहीन

बना दिया है। इसने भारतीय विद्यार्थियों की शक्ति पर भारी बोझ डाला है, और हमें नक़लची बना दिया है। देशी भाषाओं को अपनी जगह से हटा कर अंग्रेज़ी को बैठाने की प्रक्रिया अंग्रेजों के साथ हमारा सम्बन्ध का एक सबसे दुःखद प्रकरण है। राजा राममोहन राय बड़े सुधारक हुए होते और लोक मान्य तिलक ज़्यादा बड़े विद्वान बने होते, अगर उन्हें अंग्रेज़ी में सोचने और अपने विचारों को दूसरों तक मुख्यतः अंग्रेज़ी में पहुंचाने की कठिनाई से आरम्भ नहीं करना पड़ता। अगर वह थोड़ी कम अस्वाभाविक पद्धति में पढ़-लिख कर पड़े होते, तो अपने लोगों पर उनका असर, जो कि अद्भुत था, और भी ज़्यादा होता। इसमें कोई शक नहीं कि अंग्रेज़ी साहित्य के समृद्ध भंडार का ज्ञान प्राप्त करने से इन दोनों को लाभ हुआ, लेकिन इस भंडार तक उनकी पहुंच उनकी अपनी मातृभाषाओं के ज़रिये होनी चाहिये थी। कोई भी देश नक़लचियों की जाती पैदा करके राष्ट्र नहीं बना सकता। ज़रा कल्पना कीजिये कि यदि अंग्रेज़ों के पास बाइबल का अपना प्रमाणभूत संस्करण न होता तो उनका क्या होता? मेरा विश्वास है कि चैतन्य, कबीर, नानक, गुरु गोविन्दसिंह, शिवाजी और प्रताप, राजा राममोहनराय और तिलक की अपेक्षा ज़्यादा बड़े पुरुष थे। मैं जानता हूं कि तुलनायें करना अच्छा नहीं है। अपने-अपने ढंग से सभी समान रूप से बड़े हैं।

बड़ा वहम

लेकिन फल की दृष्टि से देखें तो जनता पर,

राममोहनराय या तिलक का असर उतना स्थायी और दूरगामी नहीं है, जितना चैतन्य आदि का। उन्हें जिन बाधाओं का मुक़ाबला करना पड़ा, उनकी दृष्टि से वे असाधारण कोटि के महापुरुष थे; और यदि जिस शिक्षा-प्रणाली से उन्हें अपनी शिक्षा लेनी पड़ी, उसकी बाधा उन्हें न सहनी पड़ी होती, तो उन्होंने अवश्य ही अधिक बड़ी सफलतायें प्राप्त की होतीं। मैं यह मानने से इनकार करता हूं कि यदि राजा राममोहनराय और लोकमान्य तिलक को अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान न होता, तो उन्हें वे सब विचार सूझते ही नहीं, जो उन्होंने किये। भारत आज जिन वहमों का शिकार है, उनमें से सबसे बड़ा वहम यह है कि स्वातंत्र्य से सम्बन्धित विचारों को हृदयंगम करने के लिए और तर्कशुद्ध चिन्तन की क्षमता का विकास करने के लिये अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान आवश्यक है। यह याद रखना ज़रूरी है कि पिछले पचास वर्षों से देश के सामने शिक्षा की एक ही प्रणाली रही है और विचारों की अभिव्यक्ति के लिये उसके पास जबरन लादा हुआ एक ही माध्यम रहा है। इसलिये हमारे पास इस बात का निर्णय करने के लिये कि मौजूदा पाठशालाओं और कालेजों में मिलने वाली शिक्षा न होती तो हमारी क्या दशा होती, जो सामग्री चाहिये, वह है ही नहीं। लेकिन यह हम ज़रूर जानते हैं कि भारत पचास वर्ष पहले की अपेक्षा आज अधिक ग़रीब है, अपनी रक्षा करने में आज अधिक असमर्थ है और उसके लड़के-लड़कियों की शरीर—सम्पत्ति घट गई है। इसके उत्तर में कोई

मुझ से यह नहीं कहे कि इसका कारण वर्तमान शासन-प्रणाली का दोष है। कारण, शिक्षा प्रणाली इस शासन-प्रणाली का सब से दोषयुक्त अंक है।

इस शिक्षा-प्रणाली का जन्म ही एक बड़ी भ्रान्ति में से हुआ है। अंग्रेज़ी शासक ईमानदारी से यह मानते थे कि देशी शिक्षा-प्रणाली निकम्मी से भी अधिक बुरी है। और इस शिक्षा-प्रणाली का पोषण पाप में हुआ, क्योंकि उसका उद्देश्य भारतीयों को शरीर, मन और आत्मा में बौना बनाने का रहा है।

—यंग इंडिया २७-४-१९२१

: ८ :

अंग्रेज़ी भाषा का स्थान

कई लोग ऐसा मानते हैं कि जब तक हमारे कानों में अंग्रेज़ी के शब्दों का संगीत न सुनाई दे और हमारे ओठों से उसका उच्चार न हो, तब तक हममें स्वतंत्रता की भावना पैदा नहीं हो सकती। यह हमारा मोह है। अगर यह सच हो तो स्वराज्य हमसे उतना ही दूर होगा, जितना कि क़यामत का दिन। अंग्रेज़ी आन्तरराष्ट्रीय व्यापार-व्यवसाय की भाषा है, कूटनीति की भाषा है और उसका साहित्य-भंडार अनेक प्रकार के ग्रंथरत्नों से भरपूर है। उसके द्वारा पाश्चात्य विचारों और संस्कृति की दुनिया में हमारा प्रवेश होता है। इसलिये

हममें से थोड़े से आदमियों के लिये अंग्रेज़ी का ज्ञान आवश्यक है। वे राष्ट्रीय व्यापार-वाणिज्य और अन्तरराष्ट्रीय कूटनीति के विभागों का संचालन कर सकते हैं और राष्ट्र को पश्चिम का उत्तम साहित्य, विचार और विज्ञान दे सकते हैं। अंग्रेज़ी का यह उचित उपयोग होगा। मगर, आजकल तो उसने जबरन् हमारे हृदयों में प्रियतम स्थान ले लिया है और हमारी मातृभाषाओं को पदच्युत कर दिया है। यह एक अस्वाभाविक स्थान है, जो उसे अंग्रेज़ों के साथ हमारे असमान सम्बन्धों के कारण मिल गया है। अंग्रेज़ी के ज्ञान के बिना भारतीय मस्तिष्क का सर्वोच्च विकास संभव होना चाहिये। हमारे लड़के और लड़कियों को यह सोचने का प्रोत्साहन देना कि अंग्रेजी के ज्ञान के बिना उत्तम समाज में प्रवेश करना असंभव है, भारत के पुरुषत्व और ख़ास तौर पर स्त्रीत्व के प्रति हिंसा करना है। यह विचार इतना अपमान-जनक है कि सहन नहीं किया जा सकता। अंग्रेज़ी के मोह से छुटकारा पाना स्वराज्य-प्राप्ति की एक अत्यन्त आवश्यक शर्त है।

—यंग इंडिया २-२-'२१

: ६ :

अंग्रेज़ी पढ़ाई

आज अगर लोग अंग्रेज़ी पढ़ते हैं, तो उसके

व्यापारिक महत्त्व और तथाकथित राजनीतिक मूल्य के लिये ही पढ़ते हैं। हमारे विद्यार्थी ऐसा मानने लगे हैं, और अभी की हालत देखते हुए यह बिलकुल स्वाभाविक है, कि अंग्रेज़ी के बिना उन्हें सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती। लड़कियों को तो इसी-लिये अंग्रेज़ी पढ़ाई जाती है कि उन्हें अच्छा वर मिल जाय। मैं ऐसी कई मिसालें जानता हूं, जिनमें स्त्रियां इसलिये अंग्रेज़ी पढ़ना चाहती हैं कि अंग्रेज़ों के साथ उन्हें अंग्रेज़ी बोलना आ जाय। मैंने ऐसे कितने ही पति देखे हैं कि जिनकी पत्नियां उनके साथ या उनके दोस्तों के साथ अंग्रेज़ी में न बोल सकें तो उन्हें दुःख होता है। मैं ऐसे कुछ कुटुम्बों को जानता हूं, जिनमें अंग्रेज़ी भाषा को अपनी मातृ-भाषा 'बना लिया' जाता है । सैकड़ों नौजवान ऐसा समझते हैं कि अंग्रेज़ी जाने बिना हिन्दुस्तान को स्वराज्य मिलना नामुमकिन-सा है। इस बुराई ने समाज में इतना घर कर लिया है कि अनेक लोगों की दृष्टि में शिक्षा का अर्थ अंग्रेज़ी भाषा के ज्ञान के सिवा और कुछ है ही नहीं। मेरे ख़्याल से तो ये सब हमारी गुलामी और पतन की साफ़ निशानियां हैं। देशी भाषाओं की बुरी तरह उपेक्षा की जाती है और उनके विद्वानों व लेखकों को रोटी के भी लाले पड़े हुए हैं, सो मुझसे देखा नहीं जाता। मां-बाप अपने बच्चों को और पति अपनी पत्नियों को अपनी भाषा छोड़ कर अंग्रेज़ी में पत्र लिखें, इस विचार को मैं बरदाश्त नहीं कर सकता।

संकुचित धर्म में विश्वास नहीं

मैं नहीं चाहता कि मेरा घर सब तरफ़ खड़ी की हुई दीवारों से घिरा रहे और उसके दरवाज़े और खिड़कियां बन्द कर दी जायं। मैं भी यही चाहता हूं कि मेरे घर के आस-पास देश-विदेश की संस्कृतियों की हवा यथासंभव ज़्यादा-से-ज़्यादा स्वतंत्रता से बहती रहे। पर मैं यह नहीं चाहता कि उस हवा से मेरे पैर ज़मीन पर से उखड़ जायं और मैं औंधे मुंह गिर पड़ूं। मैं दूसरों के घर में अतिथि, भिखारी या गुलाम की हैसियत से रहने के लिये तैयार नहीं। झूठे घमण्ड के वश होकर या तथाकथित सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये मैं अपने देश की बहनों पर अंग्रेज़ी विद्या का अनावश्यक बोझ डालने से इनकार करता हूं। मैं चाहता हूं कि हमारे देश के जिन जवान लड़के-लड़कियों को साहित्य में रस हो, वे दुनिया की दूसरी भाषाओं की तरह ही अंग्रेज़ी भी जी भर कर पढ़ें। फिर मैं उनसे आशा रखूंगा कि वे अपनी अंग्रेज़ी शिक्षा का लाभ डॉ० बोस, राय और ख़ुद कवि-सम्राट की तरह हिन्दुस्तान को और दुनिया को दें। लेकिन मुझे यह नहीं बरदाश्त होगा कि हिन्दुस्तान का एक भी आदमी अपनी मातृभाषा को भूल जाय, उसकी उपेक्षा करे, उससे शरमाये या ऐसा माने कि वह अपने अच्छे से अच्छे विचार अपनी भाषा में प्रगट नहीं कर सकता। मैं संकुचित या बन्द दरवाज़े वाले धर्म में विश्वास ही नहीं रखता। मेरे धर्म में ईश्वर के पैदा किये हुए छोटे से छोटे प्राणी के

लिये भी जगह है। मगर उसमें जाति, धर्म, वर्ण या रंग के घमण्ड के लिये कोई स्थान नहीं है।

—यंग इंडिया : २१-१-२५

: १० :

पश्चिमी संस्कृति

पश्चिमी संस्कृति के प्रति अपने सारे ऋण को खुल कर स्वीकार करते हुए भी मैं यह कह सकता हूं कि मुझसे अपने देश की जो भी सेवा बन सकी है, वह पूर्वी संस्कृति की ज़्यादा से ज़्यादा रक्षा कर सकने की वजह से ही की है। अगर मैं अंग्रेज़ी प्रभाव से दब गया होता और मेरे भीतर राष्ट्रीय भावना न रह गयी होती और अपने देश की जनता के तौर-तरीक़ों, आदतों, विचारों और इच्छाओं के बारे में न कुछ जानता होता, न जानने की फ़िक्र करता, उल्टे इन सब से नफ़रत करता तो मैं जनता के लिये बिलकुल बेकार हो गया होता। इस देश के बच्चों पर एक ऐसी संस्कृति की चपेट से बचने की ज़िम्मेदारी लद गयी है, जो खुद में चाहे जितनी भी अच्छी हो, लेकिन जब तक कि उन बच्चों में घुल-मिल और बस न जाय तब तक उनके लिये नामाक़ूल है, और उनकी इस ज़िम्मेदारी की वजह से हम अपने देश की कितनी शक्ति गवां रहे हैं, इसका अनुमान लगाना कठिन है।

अब इस सवाल पर समन्वय की दृष्टि से

विचार कीजिये। यदि चैतन्य, नानक, कबीर, तुलसीदास और ऐसे ही तमाम सुधारकों को बचपन से ही किसी बहुत ही अच्छे अंग्रेज़ी स्कूल में भर्ती कर दिया जाता तो क्या उन लोगों ने इससे ज़्यादा कुछ कर दिखाया होता? यदि दयानन्द किसी भारतीय विश्वविद्यालय के एम० ए० रहे होते तो क्या वे और ज़्यादा कुछ कर दिखाते? आराम से जीने और आराम पसन्द करने वाले अंग्रेज़ी के जानकार राजाओं और महाराजाओं में, जो बचपन से ही पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव में पलते थे, भला कोई एक भी ऐसा नाम ले दे जो तरह-तरह के संकटों का सामना करने वाले और अपने मेहनती आदमियों के साथ सादी ज़िन्दगी बसर करने वाले शिवाजी के समकक्ष हो? क्या ये 'नीरो' लोग जो कि अपने घर रोम में आग लगी रहने पर लंदन और पेरिस में चैन की बंसी बजाते रहते हैं, पश्चिमी सभ्यता के खूबसूरत नमूने माने जायंगे? उनकी इस संस्कृति में ऐसी कोई भी बात नहीं, जिसपर गर्व किया जा सके। यह एक ऐसी संस्कृति है, जिसने उन्हें अपने देश में ही विदेशी बना दिया है, जिसने उन्हें ऐसी शिक्षा दी, जिसके कारण वे अपनी रैयत के सुख-दुख के साझीदार बनने की जगह उसकी कमाई और अपनी आत्मा को यूरोप में बेचते फिरते हैं।

—यंग इन्डिया ५-७-१९२८

: ११ :

विदेशी माध्यम की बुराई

हमें जो थोड़ी-सी उच्च शिक्षा मिली है या जो भी उल्लेखनीय शिक्षा मिली है, वह यदि केवल अंग्रेज़ी के ही द्वारा न मिली होती, तो इस स्वयं-सिद्ध बात को सिद्ध करने की कोई ज़रूरत न रहती कि किसी भी देश के बच्चों को अपनी राष्ट्रीयता बनाये रखने के लिये प्राथमिक से लेकर ऊंची से ऊंची शिक्षा उनकी अपनी ही स्वदेशी भाषा या भाषाओं के ज़रिये मिलनी चाहिये। निश्चय ही, यह तो स्वयं स्पष्ट तथ्य है कि किसी देश के युवक वहां की जनता से तब तक जीवित सम्बन्ध पैदा नहीं कर सकते, जब तक वे ऐसी भाषा के ही ज़रिये शिक्षा पा कर उसे अपने में आत्मसात् न कर लें, जिसे वहां की जनता समझ सके। आज इस देश के हज़ारों नवयुवक एक ऐसी विदेशी भाषा और उसके मुहावरों को सीखने में, जो उनके दैनिक जीवन के लिये बिलकुल बेकार है और जिसे सीखने में उन्हें अपनी मातृभाषा या उसके साहित्य की उपेक्षा करनी पड़ती है, कई वर्ष नष्ट करने को मजबूर किये जाते हैं। इससे होने वाली राष्ट्र की अपार हानि का अंदाज़ा कौन लगा सकता है? इससे बढ़कर कोई अन्धविश्वास कभी था ही नहीं कि किसी अमुक भाषा का विस्तार हो ही नहीं सकता या उसके ज़रिये गूढ़ या वैज्ञानिक बातें समझायी ही नहीं जा सकतीं। भाषा तो

अपने बोलने वालों के चरित्र तथा विकास का सच्चा प्रतिबिम्ब होती है।

विदेशी शासन के कई दोषों में इतिहास सबसे बड़ा दोष इस बात को मानेगा कि उसने देश के बालकों पर विदेशी माध्यम का ऐसा बोझ लाद दिया है, जो उनकी शक्तियों को मार रहा है। उसने राष्ट्र की शक्ति हर ली है, विद्यार्थियों की आयु घटा दी है, उन्हें देश की जनता से दूर कर दिया है और शिक्षा को बिना कारण ही खर्चीली बना दिया है। यदि यह प्रक्रिया अब भी जारी रही, तो जान पड़ता है कि यह राष्ट्र की आत्मा को नष्ट कर देगी। इसलिये शिक्षित भारत जितनी जल्दी विदेशी माध्यम के वशीकरण से मुक्त हो जाये, उतना ही उसको और जनता को अधिक लाभ होगा।[1]

—*हिन्दी नवजीवन : ५-७-'२८*

---

[1] "मेरा यह निश्चित मत है कि राष्ट्र के जो बालक अपनी ही भाषा के सिवा किसी और भाषा में शिक्षा पाते हैं, वे आत्महत्या करते हैं। इससे उनका जन्मसिद्ध अधिकार छिन जाता है। विदेशी माध्यम का परिणाम यह होता है कि बालकों पर बेजा जोर पड़ता है और उनकी सारी मौलिकता नष्ट हो जाती है। उनका विकास रुक जाता है और वे अपने घरों से अलग पड़ जाते हैं। इसलिये मैं ऐसी चीज को राष्ट्र का सबसे बड़ा दुर्भाग्य मानता हूं।"

—*गांधीजी इन सीलोन : पृ० १०६, २४-११-२७*

: १२ :

अंग्रेज़ी में बोलने की मांग

जब कभी मैंने विद्यार्थी श्रोताओं में भाषण दिया है, तभी अंग्रेज़ी में बोलने की मांग पर मुझे अचंभा हुआ है। आप जानते हैं या आपको जानना चाहिये कि मैं अंग्रेज़ी भाषा का प्रेमी हूं। परन्तु मेरा यह विश्वास अवश्य है कि अगर भारत के विद्यार्थी, जिनसे यह आशा रखी जाती है कि वे लाखों ग़रीबों का जीवन अपना कर उनकी सेवा करेंगे, अंग्रेज़ी के बजाय हिन्दुस्तानी पर ज़्यादा ध्यान दें, तो उनकी योग्यता ज़्यादा बढ़ेगी। मैं यह नहीं कहता कि आपको अंग्रेज़ी नहीं सीखनी चाहिये; शौक़ से सीखिये। परन्तु जहां तक मुझे दिखायी देता है, वह लाखों हिन्दुस्तानी घरों की भाषा नहीं हो सकती। वह हज़ारों या लाखों आदमियों तक सीमित रहेगी, परन्तु वह करोड़ों की भाषा नहीं बन सकती। इसलिये जब विद्यार्थी मुझसे हिन्दी में बोलने को कहते हैं तो मुझे हर्ष होता है।

—हरिजन : १७-११-'३३

: १३ :

हिन्दी का प्रश्न

मैं इस मौक़े पर इस बात के कुछ साफ़-साफ़

कारण पेश करना चाहता हूं कि हिन्दी या हिन्दुस्तानी ही राष्ट्रभाषा क्यों बन सकती है। जब तक कि तुम कर्नाटक में रहो और उसके बाहर निगाह न दौड़ाओ, तब तक कन्नड़ का ज्ञान तुम्हारे लिये काफ़ी है, लेकिन किसी एक गांव का परिचय पा लेना यह साबित करने के लिये काफ़ी है कि तुम्हारा दृष्टिकोण और तुम्हारी दृष्टि-परिधि विशाल हो गयी है, और तुम कर्नाटक के लिये नहीं, भारत के लिये सोचते हो। कर्नाटक के बाहर की घटनाओं में भी तुम्हें रुचि होती है, लेकिन यह रुचि बोल-चाल की समान भाषा के बिना बहुत आगे नहीं बढ़ सकती। कर्नाटक का रहने वाला सिन्ध या यू० पी० वालों से सम्बन्ध कैसे क़ायम करेगा? हमारे बीच के कुछ लोग यह मानते रहे हैं और शायद आज भी यही मानते हैं कि अंग्रेज़ी ही ऐसा माध्यम बन सकती है। यदि यह प्रश्न हमारे कुछेक हज़ार शिक्षितों की ही होती तो अंग्रेज़ी निश्चित ही सफल हो जाती, लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि तुम लोगों में से कोई भी इससे सन्तुष्ट न होगा। तुम और मैं, हम सभी चाहते यह हैं कि लाखों लोग प्रान्तों के बीच में सम्बन्ध स्थापित करें, लेकिन अंग्रेज़ी के ज़रिये वे स्पष्टत: ऐसा कई पीढ़ियों तक नहीं कर पायंगे। वे सबके सब अंग्रेज़ी सीखें, इसके लिये कोई वजह नहीं। अंग्रेज़ी सीख लेने पर उन्हें निश्चित रूप से या यथेष्ट जीविका का भरोसा बंध जायेगा, ऐसी बात भी नहीं। ज्यों-ज्यों ज़्यादा से ज़्यादा लोग अंग्रेज़ी सीखते जायंगे, उसका जीविका की दृष्टि से महत्त्व

गिरता जायेगा। फिर हिन्दी, हिन्दुस्तानी को सीखने में अंग्रेज़ी जैसी कठिनाई नहीं। इसको पढ़ने में कभी भी उतना समय नहीं लग सकता, जितना अंग्रेज़ी पढ़ने में।

हिन्दी इतनी सरल क्यों है !

हिन्दी इतनी बेहद सरल क्यों है? इसकी वजह यह है कि भारत के हिन्दुओं द्वारा बोली जाने वाली सारी भाषाओं में, जिसमें दक्षिण की भी चारों भाषायें शामिल हैं, संस्कृत के तमाम शब्द हैं। यह इतिहास की बात है, पुराने ज़माने में दक्षिण और उत्तर के बीच सम्बन्ध संस्कृत के ज़रिये ही क़ायम किया जाता था। आज भी दक्षिण के शास्त्री उत्तर के शास्त्रियों से शास्त्रार्थ करते हैं। विभिन्न देशी भाषाओं के बीच जो अंतर है, वह ख़ास तौर पर व्याकरण का ही है। उत्तर भारतीय भाषाओं में तो व्याकरण की दृष्टि से रचना भी हर तरह से समान है। दक्षिण भारतीय भाषाओं का व्याकरण ज़रूर बहुत अलग है, और उनकी शब्दावली भी संस्कृत के प्रभाव में आने के पहले वैसे ही अलग थी। लेकिन अब तो इन भाषाओं ने भी संस्कृत के शब्दों को बहुत ही बड़ी संख्या में अपना लिया है, इतनी कि जब भी मैं दक्षिण गया हूं तो चार की चारों भाषाओं की बोली जाने वाली हर बात का सारांश ज़रूर समझ लिया है।

हिन्दी और उर्दू

हिन्दी और उर्दू या हिन्दुस्तानी के बीच कोई

भी अंतर नहीं है। व्याकरण दोनों का एक ही है, फ़र्क़ तो लिपि की ही वजह से है, और जब हम इस बात को समझ लेते हैं तो देखते हैं कि हिन्दी, हिन्दुस्तानी, उर्दू, ये तीनों शब्द एक ही भाषा के नाम हैं। अगर हम इनके शब्दकोशों को उठायें तो देखेंगे कि अधिकांश शब्द समान हैं। ऐसी हालत में लिपि के सवाल को छोड़ कर, जो स्वयं हल हो जायेगा और कोई कठिनाई ही नहीं।

जहां से मैंने बात शुरू की थी; वहां लौटते हुये, अगर तुम्हारी निगाह उत्तर में श्रीनगर से दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक, पश्चिम में कराची से पूर्व में डिब्रूगढ़ तक जाती है—जैसा कि सच-मुच चाहिये भी—तो तुम्हारे सामने हिन्दी सीखने के सिवा और कोई चारा नहीं बचता। थोड़े से विद्वानों के लिये, अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क के लिये और पश्चिम में विकसित विज्ञानों की जानकारी के लिये अंग्रेज़ी का ज्ञान आवश्यक है। लेकिन जब मैं अंग्रेज़ी को वह स्थान दिये जाते देखता हूं, जो वह ले ही नहीं सकती तो मुझे दुःख होता है। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसी कोशिश असफल ही होगी। हर चीज़ अपनी ही जगह ठीक दिखती है।

लिपि का प्रश्न

लिपि के प्रश्न पर भी एक शब्द। जब मैं दक्षिण अफ़्रीका में भी था, मैं सोचता था कि संस्कृत से उपजी हुई हर भाषा को देवनागरी लिपि ही अपनानी चाहिये, और मुझे पूरा विश्वास है, द्रविड़ भाषायें भी देवनागरी लिपि के माध्यम से सरलता

से सीखी जा सकती हैं। मैं तामिल और तेलुगु लिपियों को तथा कन्नड़ और मलयालम को भी थोड़े दिनों तक उनकी लिपियों के द्वारा ही सीखने की कोशिश की है। मैं आप से बतलाता हूं कि यह देखते हुये कि अगर चारों भाषायें एक ही लिपि, देवनागरी, में हों तो उन्हें तुरन्त सीख सकता हूं, चार-चार लिपियां सीखने में मैं बुरी तरह घबरा गया था। मुझसे जैसे लोगों के लिये जो उन चारों भाषाओं को सीखना चाहते हों, कितनी आफ़त की मेहनत ज़रूरी है। जहां तक दक्षिण की चारों देशी भाषाओं के बोलने वालों के बीच की बात है, क्या यह साबित करने के लिये किसी तर्क की ज़रूरत है कि एक भाषा के बोलने वाले को दूसरी तीनों भाषाओं के सीखने के लिये देवनागरी ही सबसे सरल लिपि होगी! हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के प्रश्न को लिपि के प्रश्न के साथ घपला नहीं कर देना चाहिये। यह प्रसंग तो मैंने केवल उन लोगों की कठिनाई की ओर संकेत करने के लिये उठा दिया, जो सारी भारतीय भाषाओं को सीखना चाहते हैं।

—*हरिजन : २७ जून १९३६*

: १४ :

विद्यार्थियों का कर्त्तव्य

विद्यार्थी को हिन्दू धर्म में ब्रह्मचारी और

विद्यार्थियों की अवस्था को ब्रह्मचर्य की अवस्था कहा गया है। जननेंद्रिय का संयम ब्रह्मचर्य की संकुचित व्याख्या है। इसका मूल अर्थ तो विद्यार्थी का जीवन अथवा अवस्था है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है हर एक इन्द्रिय का संयम। परन्तु इन्द्रियों के संयम द्वारा विद्या प्राप्त करने के संपूर्ण काल का समावेश ब्रह्मचर्याश्रम में हो जाता है। ब्रह्मचर्य के इस निर्दोष जीवन में देने की बातें कम और लेने की बातें अधिक होती हैं। इस अवस्था में विद्यार्थी माता-पिता से, शिक्षकों से और संसार से ग्रहण ही करता है। लेकिन यह किस लिये? केवल इसीलिये कि अवसर आने पर वह लौटा दिया जाय—चक्रवृद्धि ब्याज सहित लौटाया जाय। इसलिये हिन्दू ब्रह्मचर्याश्रम को धार्मिक कर्तव्य का विषय मानते हैं।

ब्रह्मचारी और संन्यासी का जीवन आध्यात्मिक दृष्टि से एक-सा माना जाता है। ब्रह्मचारी को ब्रह्मचारी बनना हो तो उसे संन्यासी बनना ही होगा। संन्यासी के लिये यह चुनाव का विषय है। हिन्दू धर्म के चारों आश्रमों का आजकल पवित्र स्वरूप नहीं रह गया है, और अगर वे हैं तो केवल नाममात्र को। विद्यार्थी-ब्रह्मचारी के जीवन का स्रोत ही विषाक्त बन गया है। यद्यपि आजकल इन आश्रमों में कोई ऐसी चीज़ नहीं रह गई है, जिससे वर्तमान पीढ़ी कुछ सीख सके या जिसका वह अनुकरण कर सके; फिर भी हम उन आदर्शों को फिर से अपना सकते हैं, जिन से आश्रमों को शुरू में प्रेरणा मिली थी।

—यंग इंडिया : २९-१-'२५

हम आदर्श से नीचे गिर गये हैं

आज हम किस तरह विद्यार्थियों के धर्म को समझ सकते हैं ? उस आदर्श से हम बहुत नीचे गिर गये हैं। आज तो माता-पिता भी उलटा पाठ पढ़ाते हैं। वे समझ-बूझकर नहीं, बल्कि इसी ग़रज़ से अपने लड़कों को पढ़ाते हैं कि वे पढ़-लिख कर धन कमायें और पद-प्रतिष्ठा प्राप्त करें। इस तरह हमारी वास्तविक स्थिति उलटी बना दी गई है। जो हमारा धर्म होना चाहिये, उसे छोड़कर हम विद्या का व्यभिचार कर रहे हैं। फलतः विद्यार्थी-जीवन में जो परम शान्ति, जो सुख और जो निर्दोष बुद्धि होनी चाहिये, वह हमें नहीं दिखाई देती। हमारे विद्यार्थी चिंताओं के भार से दबे हुये हैं, जब कि उन्हें वास्तव में किसी भी बात की चिन्ता नहीं होनी चाहिये। इस दशा में तो कुछ देने की गुंजाइश ही नहीं है; केवल ग्रहण करना, लेते रहना और लेने में विवेक-बुद्धि से काम लेना—इतना ही काम विद्यार्थी का है। अनेक प्रयोगों के द्वारा शिक्षक हमें विवेक-बुद्धि की शिक्षा देता है। वह हमें बताता है कि कौनसी चीज़ ग्राह्य है और कौनसी चीज़ त्याज्य है। यदि हमें यह कला ज्ञात न हो तो हम एक यंत्र बन जाते हैं। हम तो सजीव मूर्ति हैं, चेतन-रूप हैं। और यह समझ लेना चेतन का स्वभाव है कि कौनसी वस्तु ग्राह्य है और कौनसी त्याज्य है। इस कारण से विद्यार्थी-अवस्था में हम सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग, मधुर वाणी का ग्रहण, कठोर और दुःखकर वाणी का त्याग आदि बातें

सीखते हैं और उनके सीखने से हमारा जीवन सरल हो जाता है।

परन्तु आज तो हमने धर्म का संकर (मिश्रण) कर डाला है। आज हमें इसी संकर के खिलाफ़ लड़ना है। यदि माता-पिताओं ने अपने बालकों को भिन्न शिक्षा दी होती और वायुमण्डल को बिगाड़ा न होता, तो विद्यार्थियों को इस वायुमण्डल का मुक़ाबला करने की ज़रूरत न रहती। प्राचीनकाल में विद्यार्थी-जीवन ऋषियों के आश्रमों में व्यतीत होता था, परन्तु आज हालत उलटी है। जहां समुद्र की स्वच्छ हवा आती हो, वहां दिल खोल कर हवा खानी चाहिये। परन्तु जहां बदबू आती हो, वहां मुंह बन्द कर लेना चाहिये। वहां का वायुमण्डल बदबू से भरा हुआ है। इसीलिये मुझे उसके खिलाफ़ आवाज़ उठाये बिना चारा नहीं। इस कसौटी के अनुसार आप देखेंगे कि आज आप को बहुतेरी चीज़ें त्यागनी पड़ेंगी। बहुतसी बातें ऐसी होंगी जो केवल हानिकारक हैं।

आज कल के विद्यार्थी

प्राचीन काल में मौखिक शिक्षा दी जाती थी। मंत्र ही सिखाये जाते थे। मंत्र क्या है? संक्षिप्त भाषा में कहा हुआ तत्त्व। इसके बाद उन पर टीकायें हुईं। आज तो पुस्तकों का ढेर लग गया है। मैं यदि अपने ही काल की बात करूं; तो मुझे बहुतेरी बातें त्याग करने लायक़ मालूम होती थीं। छठी-सातवीं श्रेणी के विद्या-

र्थियों में रेनाल्ड्स के उपन्यासों को कौन न पढ़ता होगा; यह कहना कठिन है। लेकिन मैं तो था मंदबुद्धि। मैं महज़ पास होने का ही ख्याल रखता था और पिताजी की सेवा करता था। पिताजी की सेवा करना और पास होने लायक़ किताबें पढ़ लेना, यही मेरा काम था। इससे मैं उन उपन्यासों से बच गया। दूसरों पर उनका क्या असर होता था, सो मैं नहीं जानता। परन्तु मैंने विलायत में देखा था कि अच्छे-अच्छे मण्डलों में ये पुस्तकें पढ़ी नहीं जाती थीं। उनका पढ़ना अच्छा नहीं समझा जाता था। इसलिये मैंने समझ लिया कि उनके न पढ़ने से मेरी कुछ हानि नहीं हुई।

आजीविका का विचार

इसी प्रकार आज अनेक चीज़ें ऐसी हैं, जिनसे मुंह मोड़ने की ज़रूरत है। हम बड़ी विषम स्थिति में आ फंसे हैं। आज तो बारह साल की उम्र से ही आजीविका का विचार करना पड़ता है। यह विद्यार्थी आश्रम के साथ गृहस्थाश्रम का संकर हुआ। गंगा-यमुना का संगम तो सुन्दर है; लेकिन यह संगम नहीं, परन्तु संकर है। अतएव विद्यार्थियों को आज यह जान लेना चाहिये कि देश में क्या हो रहा है। आज शायद ही कोई विद्यार्थी ऐसा होगा, जो अख़बार न पढ़ता हो। मैं यह कैसे कहूं कि आप को अख़बार न पढ़ना चाहिये? परन्तु विद्यार्थियों से मैं इतना ज़रूर कहूंगा कि वे अख़बारों के क्षणिक साहित्य की ओर आंख उठा कर न देखें। उनमें सच्चा साहित्य,

मंजी हुई शिष्ट भाषा नहीं मिलती। उनमें जो बातें मिलती हैं वे क्षणिक होती हैं, जब कि हमें ज़रूरत तो स्थायी भाषा ग्रहण करने की है। विद्यार्थी-जीवन जीवन की बुनियाद है, जीवन की तैयारी है। इस काल में हम अपने लिये अख़-बारों से विचार-सामग्री किस तरह ले सकते हैं? यह स्थिति दयाजनक है, भयंकर है। इससे हमें बाहर निकलना ही होगा। यह बात मैं इसी-लिये कहता हूं कि मैंने शिक्षा के बारे में अनेक प्रयोग किये हैं। प्रयोगों से मुझे इस बात का अनु-भव हुआ कि शिक्षा क्या चीज़ है? वह कैसी होनी चाहिये? और इसका विचार करते-करते मैंने सत्याग्रह को पाया, मुझे असहयोग का दर्शन हुआ और इसलिये मुझे यह प्रयोग करने का साहस हुआ। आप यह न समझिये कि इन प्रयोगों से मुझे पश्चात्ताप हुआ है। यह भी न मानिये कि ये केवल स्वराज्य के लिये किये गये हैं। लड़कों के सामने भी इन्हें पेश करते हुये मुझे संकोच नहीं होता। इनकी निर्दोषता को मैं किस प्रकार प्रकट करूं? चरखे में उन सब का समावेश हो जाता है। इस-लिये मैंने चरखा देश के सामने रखा। इसे देख-कर पहले तो लोग हंसे, फिर तिरस्कार प्रकट करने लगे और अब उसका स्वागत करने का काल आ रहा है।

—यंग इंडिया : २९-१-'२५

: १५ :

चरखे का सन्देश

मैं हर अवसर पर, हर घड़ी, चरखे का सन्देश सुनाने में नहीं थकता। क्योंकि यह इतना निर्दोष होते हुये भी भलाई की बहुत बड़ी शक्ति रखता है। वह स्वादिष्ट भले न हो, परन्तु किसी स्वास्थ्यप्रद भोजन में तन्दुरुस्ती को भारी नुक़सान पहुंचानेवाले मसालेदार भोजन का ज़ायक़ा कभी नहीं होता। और इसीलिये गीता ने एक स्मरणीय श्लोक में सभी विचारशील लोगों से ऐसे पदार्थ ग्रहण करने को कहा है, जिनका स्वाद शुरू में कड़ुआ होता है, परन्तु जो अन्त में अमरत्व प्रदान करनेवाले होते हैं। आज ऐसी चीज़ यह चरखा और उससे पैदा हुई वस्तु है। कातने से बड़ा और कोई यज्ञ नहीं है। यह दुःखित आत्मा को शांति प्रदान करता है, विद्यार्थियों के बेचैन मन को तसल्ली देता है और उनके जीवन को आध्यात्मिक बनाता है। मेरे पास तात्कालिक परिणाम ढूंढ़नेवाले आज के व्यावहारिक युग में भारत के लिये इससे अच्छा और नुसख़ा नहीं है। गायत्री मैं ख़ुशी से देश के सामने रख सकता हूं, लेकिन उसके बारे में मैं तात्कालिक परिणाम का वचन नहीं दे सकता। लेकिन चरखा ऐसी चीज़ है। उसे आप ईश्वर का नाम लेकर ग्रहण कर सकते हैं और तात्कालिक फल की आशा रख सकते हैं। एक अंग्रेज मित्र ने लिखा कि उनकी अंग्रेज़ बुद्धि

उनसे कहती है कि कातना एक अच्छा शौक़ है। मैंने उनसे कहा, "आपके लिये वह शौक़ की चीज़ हो सकता है, पर हमारे लिये वह कल्पवृक्ष है।

श्रद्धा के निमित्त

इसलिये मुझे आपके सामने चरखा रखते हुये ख़ुशी होती है—आप चाहें तो उसे शौक़ ही समझें—ताकि उससे आपके जीवन में उत्साह और सुगन्ध पैदा हो, आपको शान्ति और आनन्द प्राप्त हो। इससे आपको ब्रह्मचर्य का जीवन बिताने में सहायता मिलेगी। श्रद्धा विद्यार्थी-अवस्था में बड़े महत्त्व की वस्तु होती है। बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं, जिन्हें आपको मान लेना पड़ता है। आप उन्हें सिर्फ़ इसलिये स्वीकार कर लेते हैं कि वे आपको अपने गुरु से मिलती हैं। उदाहरणार्थ—भूमिति के कुछ साध्य समझने में मेरे लिये बहुत कठिन थे। मैंने उन्हें यों ही मान लिया और आज मैं उन्हें केवल समझ ही नहीं लेता हूं, बल्कि भूमिति के अध्ययन में उतनी ही आसानी से डूबा रह सकता हूं जितना अपने मौजूदा काम में। अगर आप श्रद्धापूर्वक चरखा चलायें, तो निश्चित जानिये कि किसी दिन आप यह स्वीकार करेंगे कि एक बूढ़े ने इसके बारे में कभी जो कहा था वह अक्षरशः सही था। एक शास्त्रवेत्ता ने गीता के निम्नलिखित श्लोक को (२–४०) चरखे पर लागू किया, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं।

"इसमें प्रयत्न व्यर्थ नहीं जाता, इसमें कोई

बाधा भी नहीं है। इस धर्म से थोड़े से अभ्यास से भी मनुष्य महान विपत्ति से बच जाता है।'[1]

—यंग इंडिया, २६-१-'२५

: १६ :

'सूत कातने से मरना बेहतर'

एक बार मैं (बंगाल के) विद्यार्थियों के बीच बोल रहा था तो उसमें से एक ने कहा, "क्या आपको यह मालूम है कि हम चर्खा को नहीं चलाते? चर्खे में कोई आकर्षण नहीं है। हमारी शिक्षा ने हमें ऐसे किसी भी काम के लिये अयोग्य बना डाला है। हममें से अनेक सूत कातने से अच्छा मौत समझते हैं। सूली पर हम खुशी से मौत को गले लगा सकते हैं, लेकिन सूत कात सकना असम्भव है। हमें कोई शानदार चीज़ दीजिये। हमें रूमानियत की शौक़ है और कताई में ऐसी कोई चीज़ नहीं।"

मैंने अपने रूमानी दोस्त से बतलाया कि चर्खे में वह जितना सोचते हैं उससे ज़्यादा रूमानियत है।...मैंने उन्हें बतलाया कि जो लोग कताई न करने के लिये एक न एक बहाना खोज निकालते

---

[1] नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

हैं, वे असल में देश-प्रेमी नहीं हैं। अगर कोई डाक्टर किसी मरते हुये बच्चे की जान बचा लेने के कुछ उपाय बताये तो क्या उसका पिता उनका पूरा पालन न करेगा, चाहे वे हास्यास्पद ही क्यों न हो ? मेरे श्रोता के और मेरे बीच भी यही बात लागू होती है। भारत के करोड़ों निवासी आज मौत के द्वार पर हैं और कताई से उनकी चिंताजनक ग़रीबी की समस्या को हल किया जा सकता है।

बदक़िस्मती से साधारण विद्यार्थी परीक्षा के सिवा और कहीं अपने ज्ञान को काम में नहीं लाता। अमल के लिये केवल इम्तहान पास होने की सनद पा लेने की इच्छा से कहीं ज़्यादा देश के सच्चे प्रेम से उत्साह मिलना चाहिये। कताई में उतनी ही रूमानियत है जितनी रेखागणित के एक कठिन सवाल को या जोड़-गुणा से भरे हुये अंकगणित के सवाल को हल कर लेने में। और अगर बंगाली लड़के परीक्षा में रूमानियत की कमी नहीं अनुभव करते तो कताई में, जो किसी राष्ट्रीय जीवन के निर्वाह के लिये उसी तरह ज़रूरी है जैसे किसी व्यक्ति के लिये परीक्षा व्यक्तिगत जीवन-निर्वाह के लिये, रूमानियत न पाने के लिये और भी वजह नहीं।

—यंग इंडिया, ४ जून, १९२५

: १७ :

कताई का महत्त्व

असल में चरखा बुद्धिपूर्वक अपनाने की चीज़ है। मेरी राय में उसके साथ भारत के सारे मानव-समूह का कल्याण जुड़ा हुआ है। इसलिये विद्यार्थियों को जनसाधारण की गहरी दरिद्रता के बारे में कुछ न कुछ तो जानना ही चाहिये। उन्हें कुछ गांवों का, जो जर्जर होकर नष्ट हो रहे हैं, प्रत्यक्ष निरीक्षण करना चाहिये। उन्हें भारत की आबादी का ज्ञान होना चाहिये। उन्हें इस प्रायद्वीप के विशाल भूभाग की जानकारी होनी चाहिये और यह मालूम होना चाहिये कि देश के करोड़ों लोग क्या काम करके अपनी अल्प आय में वृद्धि कर सकते हैं। उन्हें देश के ग़रीबों और दलितों के साथ एकरूप होना सीखना चाहिये। उन्हें यथाशक्ति उन चीज़ों का, जो ग़रीब से ग़रीब को नहीं मिल सकतीं, त्याग करने की शिक्षा दी जानी चाहिये। तब कताई का महत्त्व उनकी समझ में आयेगा।

—यंग इंडिया, २४-६-'२६

: १८ :

चरखे की पुकार

आदमी पानी पीने का हौज़ बना सकता है, परन्तु क्या वह पानी न पीना चाहनेवाले घोड़े को वहां ले जा सकता है ? मैं नौजवानों के साथ हमदर्दी रखता हूं, परन्तु उनके ग़लत दिशा में बह जाने के लिये अपने को दोषी नहीं मान सकता। जो सुनना चाहते हों उन्हें मैं निश्चित रूप में कहता हूं कि वे चरखे का सन्देश अपनायें। परन्तु असल बात यह है कि उन पर कोई असर नहीं होता दिखाई देता। यदि ऐसा है तो एक और अत्यावश्यक कार्य भी है—वह है 'अछूतों' की सेवा का। इस क्षेत्र में भी उन विद्यार्थियों के लिये, जो राष्ट्रीय सेवा के लिये तड़प रहे हैं, काफ़ी से अधिक कार्य है। उन्हें समझना चाहिये कि जो लोग सारे समाज का नैतिक स्तर ऊंचा उठाते हैं, जो लाखों बेकारों के लिये काम जुटाते हैं, वे सब स्वराज्य के सच्चे निर्माता हैं। वे ख़ालिस राजनीतिक कार्य को भी आसान बना देंगे। इस रचनात्मक काम से विद्यार्थियों के उत्तम गुण प्रगट होंगे। यह स्नातकों और उपस्नातकों दोनों के लिये उपयुक्त काम है। यही स्नातक की सच्ची उपाधि है।

परन्तु यह हो सकता है कि उनके लिये न चरखे का काम और न अस्पृश्यता-निवारण का काम ही काफ़ी उत्तेजक हो। तब उन्हें जान लेना

चाहिये कि मैं निकम्मा वैद्य हूं। मेरे पास नुस्खों का भंडार सीमित ही है। मैं मानता हूं कि सब रोग एक ही हैं और इसलिये उनका इलाज भी एक ही है। परन्तु क्या किसी वैद्य को उसकी मर्यादाओं के लिये दोष देना चाहिये, ख़ास तौर पर जब वह चिल्ला-चिल्ला कर उनकी घोषणा करता है?

जिन विद्यार्थियों की तरफ़ से पत्रलेखक ने लिखा है, उनमें इतनी सूझबूझ अवश्य होनी चाहिये कि वे अपना जीवन-मार्ग स्वयं ढूंढ़ लें। स्वावलम्बन ही स्वराज्य है।

—यंग इण्डिया, १६-६-'२६

: १६ :

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में

कई ओर से मुझे यह सलाह मिली है कि आप अपनी बातें सुना चुके। अब आप की कोई सुनना नहीं चाहता। खद्दर की बातें करने से आप बाज़ क्यों नहीं आते? मगर मैं अपना प्रिय मंत्र सुनाने में बाज़ क्यों आऊं? मेरे सामने तो प्राचीन काल के प्रह्लाद का उदाहरण है जिसने मरण से भी अधिक कष्ट सहना स्वीकार किया मगर राम नाम छोड़ना नहीं। और मुझे तो अभी कोई कष्ट नहीं सहना पड़ा है। मेरे कानों

में मेरे देश की दुर्दशा का जो एकमात्र सन्देश सुनाई पड़ता है, उसे मैं क्योंकर छोड़ दूं ? पंडितजी ने तुम्हारे लिये लाखों जमा किये हैं और अब भी राजों महाराजों से लाखों जमा कर रहे हैं ! ऊपरी दृष्टि से तो यह रुपया राजों, महाराजों से आता हुआ मालूम होता है मगर सचमुच में तो यह इस देश के करोड़ों ग़रीबों की ही कमाई है। यूरोप के विरुद्ध हमारे देश में धनियों का धन ग़रीबों के ग़रीबी से बढ़ता है और उनमें से अधिकांश को एक जून भर पेट खाना मयस्सर नहीं होता। इस प्रकार तुम जो शिक्षा पाते हो उसका खर्च चुकाते हैं भुक्खड़ गांववाले और उन्हें इस शिक्षा का संयोग स्वप्न में भी नहीं मिल सकता। यह तुम्हारा कर्तव्य है कि वह शिक्षा लेने से इनकार करो जो ग़रीबों को भी प्राप्य न हो। मगर आज तुमसे मैं यह नहीं मांगता। उनके लिये थोड़ा यज्ञ करो। गीता का वचन है कि जो अपना यज्ञ किये बिना खाता है वह अपना भोजन चुराता है। महायुद्ध के समय में ब्रिटिश नागरिक जनता से इसकी मांग की गई थी कि हर घर के आंगन में थोड़े आलू बोये जायं और थोड़ी सिलाई हुआ करे। हमारे लिये इस युग का यज्ञ है चर्खा चलाना। मैं इसके विषय में दिन रात बातें करता रहा हूं, लिखता रहा हूं, आज मैं और कुछ नहीं कहूंगा।

खरे जवाहिर

तुम्हारे लिये लाखों रुपये मांगने, महलों के समान इन मकानों को उठाने में, मालवीयजी

का एक मात्र उद्देश है देश में मातृ-भूमि की सेवा के लिये खरे जवाहिर भेजना जो स्वस्थ और सफल नागरिक होंगे। वह मतलब पूरा न हो सकेगा अगर तुम पश्चिम से आने वाली हवा में बह चले। वह अपवित्रता की हवा है। यूरोप में कुछ मित्र हैं, बहुत ही कम हैं, जो इस ज़हरीली प्रवृत्ति से ज़बर्दस्त मोर्चा ले रहे हैं। यदि आप समय रहते चेत न जाओगे तो अनीति की बहिया जिसका बल दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है तुम्हें बहा ले जायेगी। मैं अपनी सारी शक्ति से तुम्हें पुकार पुकार कर कहता हूं कि 'संभलो, चेतो, और जलने के पहले ही भाग चलो'।

—हिन्दी नवजीवन : २०-१-१९२७

: २० :

बिहार विद्यापीठ में

द० अफ्रीका में मैं जब तक था मैंने हीरे की एक भी खान नहीं देखी थी। मुझे यह भय था कि मैं अस्पृश्य गिना जाता हूं, इससे मेरा शायद अपमान हो! पर गोखले को अफ्रीका का यह उद्योग मुझे दिखाना था। उनका अपमान तो होना ही न था। उनके साथ मैंने जो दृश्य देखा, उसका तुमसे क्या वर्णन करूं? धूल और पत्थर का भारी पहाड़ पड़ा हुआ था। इसके ऊपर करोड़ों रुपये का खर्च हो चुका था और लाखों मन धूल

निकलने के बाद, दो चार खरे हीरे निकल गये तो भाग्य खुले ! पर इस खान वाले का मनोरथ था अनुपम हीरा निकालना । कोहेनूर से भी बढ़ा चढ़ा कलीनन हीरा वह निकाल कर कृतार्थ होना चाहता था । मनुष्य की खान पर भी हम लाखों करोड़ों ख़र्च कर के वैसे ही मुट्ठी भर रत्न और हीरा निकाल सकें तो क्या ही अच्छा हो ? ये रत्न उत्पन्न करने के भाव से ही यह विद्यापीठ चलना चाहिये ।

करोड़ों गरीबों की दृष्टि से सोचो

मुझे इलाहाबाद की इकॉनामिक इंस्टिट्यूट देखने का अवसर मिला था । जब मुझे प्रो० जेवन्स ने इंस्टिट्यूट दिखाई और यह बताया कि उस पर ३० लाख रुपये ख़र्च हुये हैं (यदि मेरी याद ठीक है) तो मैं कांप उठा । ऐसे महल लाखों आदमियों को भूखा रखे बिना खड़े नहीं किये जा सकते । नई दिल्ली को देखिये । वह भी यही कहानी कह रही है । रेल के पहले और दूसरे दर्जे के डिब्बों में जो शानदार सुधार हुये हैं उन्हें देख लीजिये । आज सारा झुकाव ही इस तरफ़ है कि थोड़े से अमीरों का ख़याल रखा जाय और ग़रीबों की अवहेलना की जाय । यह शैतानियत नहीं तो और क्या है ? मुझे सच ही बोलना हो तो इससे कम मैं नहीं कह सकता । जिन्होंने इस प्रणाली की कल्पना की उनसे मेरा कोई झगड़ा नहीं । वे और कुछ कर ही नहीं सकते थे । हाथी चींटी का ख़याल कैसे रखेगा ? जैसा कि सर लीपल

ग्रिफ़न ने दक्षिण अफ़्रीका के शिष्टमंडल के सदस्य की हैसियत से अपने भाषण में एक बार कहा था, जिसके पैर में बिवाई फटती है वही उसका कष्ट जानता है। हमारे कामकाज की व्यवस्था ऐसे लोगों के हाथ में है, और उनकी पूरी नेकनीयती हो तो भी उनके अच्छे से अच्छे आदमी भी हमारे कामकाज की व्यवस्था इतनी अच्छी तरह नहीं कर सकते, जितनी कि हम कर सकते हैं। कारण, उनकी और हमारी कल्पनाओं में आकाश-पाताल का अन्तर है। वे मुट्ठीभर अमीरों की दृष्टि से सोचते हैं। हमें करोड़ों ग़रीबों की दृष्टि से सोचना होगा।

सौर मण्डल का सूर्य

स्नातक भले उपाधियां ग्रहण करें, अपनी पसन्द की कोई भी बात सीखें, लेकिन उसके केन्द्र में चरखा होना चाहिये और उनके अर्थ-शास्त्र तथा विज्ञान को चरखे का उद्देश्य सिद्ध करना चाहिये। आप लोग चरखे को त्याग कर किसी कोने में मत डाल देना। चरखा हमारी समस्त प्रवृत्तियों के सौर मण्डल का सूर्य है। उसके बिना विद्यापीठ केवल नाम के ही विद्यापीठ रहेंगे।

.... हम जानते हैं कि प्रथम विश्वयुद्ध के बाद, जिसमें असत्य का उच्चतम धर्म की तरह प्रचार किया गया था, यूरोप क्या अनुभव कर रहा है। संसार युद्ध के बाद के परिणामों से थक गया है और जैसे आज चरखे से भारत को शांति प्राप्त होती है, वैसे ही कल दुनिया को भी हो सकती है।

क्योंकि वह अधिक से अधिक लोगों की अधिक से अधिक भलाई का प्रतीक नहीं, बल्कि सब लोगों की अधिक से अधिक भलाई का प्रतीक है।

ग़रीब लोगों का सहारा

जब कभी मैं किसी मनुष्य को भूल करते देखता हूं, तो अपने मन में कहता हूं कि मैंने भी भूल की है; जब मैं किसी कामी पुरुष को देखता हूं तो अपने आप से कहता हूं कि किसी समय मैं भी कामी था। इस प्रकार मैं संसार में हर-एक के साथ अपना सम्बन्ध अनुभव करता हूं और यह महसूस करता हूं कि हममें से छोटे से छोटे आदमी के सुखी हुए बिना मैं सुखी नहीं हो सकता। मैं इसी अर्थ में चाहता हूं कि आप चरखे को अपने अध्ययन का केन्द्र बनायें। जैसे प्रह्लाद को सर्वत्र राम दिखाई देते थे और तुलसीदास को कृष्ण की मूर्ति में भी राम ही दिखाई देते थे, ठीक इसी तरह आपकी सारी विद्या का उपयोग चरखे का गूढ़ार्थ समझने में होना चाहिये। हमारे विज्ञान, हमारी बढ़ईगिरी, हमारे अर्थशास्त्र सबका उपयोग चरखे को हमारे ग़रीब से ग़रीब लोगों का अवलम्बन और मुख्य सहारा बनाने में होना चाहिये।

—यंग इण्डिया, १०-२-'२७: पृ० ४३-४४

: २१ :

पूना के विद्यार्थियों से

संभवतः अंग्रेज़ी में अपना संदेश सुनाने से मुझे तुमसे अधिक रुपये मिलते या तुम मेरी बात अधिक अच्छी प्रकार समझ पाते, किन्तु मैं अपने संदेश को, अपने से, या जिस साधन से वह पहुं-चाया जाय, उससे भी कहीं ऊंचा मानता हूं। इसकी ख़ास अपनी ही निराली ताक़त है और मैं आशा करता हूं कि हिन्दुस्तान के नौजवानों पर इसका प्रभाव पड़ेगा। मेरे जीते २ इसका प्रभाव पड़े या न पड़े—इसकी मुझे कोई पर्वा नहीं है। मगर मेरा विश्वास अटल है, और जैसे जैसे दिन बीतते जायेंगे और जनता की यंत्रणा बनी ही रहेगी, यह सन्देश हर एक दिलदार हिन्दुस्तानी के दिल में घर करता जायेगा। तुम्हें समझ लेना होगा कि इस उमर में जब कि मुझे अपनी ज़िन्दगी भर मिहनत करने के बाद आराम करना चाहिये, मैं योंही बिना मतलब के देश के एक किनारे से दूसरे किनारे तक चक्कर नहीं काट रहा हूं। इसका कारण यह है कि दिनों दिन मेरे दिल में और भी बैठती जाती है कि मरते दम तक जितने लोगों तक मैं यह सन्देश पहुंचा सकूं, पहुंचाऊं।

शिक्षा पाने के लिए बदला चुकाओ

तुम चाहो तो वह शिक्षा लेते रह सकते हो,

मगर उन्हें कुछ भला-सा बदला तो चुकाओ। मैं जानता हूं कि तुमने खादी नहीं पहनी है। वह इस लिये नहीं कि तुम्हारी मनोवृत्ति ही उलटी है, बल्कि इसलिये कि तुम्हें इसका विश्वास नहीं कि सचमुच में ग़रीबी और बेकारी नाम की कोई समस्या है, जिसके बारे में मैं पुकार-पुकार कर कह रहा हूं। स्याम देश के राजा को इस पर विश्वास नहीं हुआ था कि लॉर्ड कर्ज़न ऐसे देश से आये थे, जहां पर नदियों में बर्फ़ जमी रहती है। मैं विश्वास दिलाता हूं कि मैं अपनी आंखों देखी बातें कह रहा हूं, कि हमारे देश में ३ करोड़ आदमियों को दिन में एक बार भी भर पेट खाना नहीं मिलता।

—हिन्दी नवजीवन : २४-३-'२७

: २२ :

ईश्वर का हाथ

चूंकि मुझे चरखे में ईश्वर का हाथ काम करता दिखाई देता है, और चूंकि चरखे में मुझे छोटे से छोटे मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति दिखाई देती है, इसलिये मैं समय-असमय उसके बारे में विचार करता हूं, उस पर काम करता हूं, उसके बारे में प्रार्थना करता हूं और उसके बारे में बात करता हूं। यदि कोई दूसरी चीज़ ऐसी हो, जो हमें संसार के भूखों मरनेवाले लोगों के अधिक नज़दीक लाती हो—फ़िलहाल भारत को छोड़ दें—जो

आप को तुरन्त भंगी की बराबरी में रख देती हो, तो मैं चरखे को छोड़ दूंगा और उस चीज़ को गले लगा लूंगा। अब तो आप भी शायद समझ जायेंगे कि मैं क्यों निर्लज्जतापूर्वक निरन्तर दरवाज़े-दरवाज़े भिक्षापात्र लेकर जाता हूं और हर एक से याचना करता हूं कि वह उसमें सहृदयतापूर्वक कुछ डालें।

—*विथ गांधीजी इन सीलोन, पृ० १३३; २६-११-'२०*

: २३ :

माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य

मैं जो कुछ हूं उस सब का श्रेय मेरे माता-पिता को है। उनके प्रति मेरी भावना वैसी ही थी, जैसी श्रवण की अपने माता-पिता के प्रति बताई जाती है। इसलिये जब मैंनें यह बात सुनी, तो मेरे मन में जो क्रोध उमड़ रहा था, उसे मैं बहुत ही कठिनाई से रोक सका। जिस युवक ने यह बात कही थी, वह उसके विषय में गंभीर नहीं था। परन्तु आज-कल कुछ नौजवानों को इस बात का शौक़ हो गया है कि वे अपने को श्रेष्ठ समझते हैं और पूर्णता के अवतार होने का ढोंग करते हैं। मेरी राय में बालिग़ बेटे का प्रथम कर्त्तव्य अपने बूढ़े और दुर्बल माता-पिता का पालन-पोषण करना है। यदि वे अपने माता-पिता का पालन-पोषण करने की स्थिति में न हों तो विवाह न करें। जब तक यह पहली

शर्त पूरी न हो जाय, सार्वजनिक काम हाथ में न लें। स्वयं भूखों मर कर भी अपने माता-पिता के लिये अन्न-वस्त्र जुटायें। परन्तु नौजवानों से यह आशा नहीं रखी जाती कि वे विचारहीन या अज्ञान माता-पिता की मांग को पूरा करें। ऐसे माता-पिता होते हैं जो गुज़ारे के लिये नहीं, बल्कि झूठे दिखावे या लड़कियों के विवाह के अनावश्यक ख़र्च के लिये रुपया मांगते हैं। मेरी राय में सार्वजनिक कार्यकर्ताओं का कर्त्तव्य है कि वे ऐसी मांगों को मानने से आदरपूर्वक इनकार कर दें।

असलियत तो यह है कि मैंने कभी किसी सार्वजनिक कार्यकर्त्ता को भूखे मरते देखा हो, ऐसा याद नहीं। कुछेक को अभाव में जीवन बिताते देखा है। थोड़े ही ऐसे मिले हैं, जिन्हें जितना वे पाते हैं उससे ज़्यादा मिलना ज़रूरी है। लेकिन जैसे-जैसे उनका काम बढ़ेगा और उनकी योग्यता की पहचान हो जायेगी, उन्हें अभाव नहीं रह जायेगा। कठिनाइयां और परीक्षायें मनुष्य का निर्माण करती हैं। वे स्वस्थ विकास के लक्षण हैं। अगर हर नौजवान भरे-पूरे घर में ही पैदा हो और यह कभी जान ही न पाये कि ज़रूरी चीज़ों के बिना जीवन कैसा बीतता है, तो परख के मौक़े पर कमज़ोर साबित हो जायेगा। त्याग तो सुख है।

त्याग ही सुख है

तमाम नौजवानों ने अच्छी से अच्छी ज़िंदगी को लात मार दी है। यह उनके लिये श्रेय की बात

है। लेकिन वहां भी, मैं पूरे आदर के साथ यह सुझा देना चाहूंगा कि बड़ाई को बहुत-कुछ बढ़ा-चढ़ा भी दिया जा सकता है।

त्याग से प्रसन्नता न हो तो वह किसी काम का नहीं। त्याग करने और मुंह फुलाने का मेल नहीं बैठता। वह मानवता का घटिया नमूना होगा, जिसे अपने त्याग के लिये सहानुभूति की ज़रूरत हो। बुद्ध ने सर्वस्व इसलिये त्याग दिया कि उनसे उसके बिना रहा नहीं गया। कोई चीज़ रखना उनके लिये आत्मपीड़ा की बात थी। लोकमान्य इसलिये ग़रीब बने रहे कि उन्हें सम्पत्ति रखना असह्य मालूम होता था। हम तो अभी तक त्याग के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। असलियत तो अभी आनी बाक़ी है।

ऐण्ड्रूज़ थोड़े से रुपयों का पास में होना भी बोझ समझते हैं और अगर मिल ही जायें तो उन्हें ख़र्च कर देने के लिये लगातार कोशिश में लगे रहते हैं। मैंने कई बार उनसे कह दिया है कि उन्हें किसी रखवाले की ज़रूरत है। वे मेरी बात सुनते हैं, हंसते हैं और बिना थोड़े भी पछतावे के वही आदत जारी रखते हैं। मदर-ए-हिन्द एक ज़बर्दस्त देवी ठहरी। वह यह कहने के पहले कि, 'शाबास, मेरे बच्चो, अब तुम आज़ाद हो,' तमाम नौजवान पुरुषों और स्त्रियों से चाहे और अनचाहे हर तरह के त्याग करा लेगी। हम लोग अभी तक तो त्याग के साथ खिलवाड़ भर कर रहे हैं। उसका असली रूप तो अभी आने को है।

—*यंग इण्डियाः २५-६-१९२५*

: २४ :

विद्यार्थी—राष्ट्र के निर्माता

विद्यार्थियों को राष्ट्र के निर्माता बनना होगा। पश्चिम की भद्दी नक़ल करने तथा शुद्ध और परिष्कृत अंग्रेज़ी बोलने-लिखने की योग्यता से स्वतंत्रता-देवी के मंदिर की रचना में एक भी ईंट नहीं जुड़ेगी। विद्यार्थी-जगत् को आज जो शिक्षा मिल रही है, वह भूखे-नंगे भारत के लिये बेहद महंगी है। उसे बहुत ही थोड़े लोग प्राप्त करने की आशा रख सकते हैं। इसलिये उनसे यह आशा रखी जाती है कि वे राष्ट्र के लिये अपना जीवन तक न्योछावर करके अपने को उस शिक्षा के योग्य सिद्ध करें। विद्यार्थियों को समाज की रक्षा करने वाले सुधार-कार्य में अगुआ बनना चाहिये। वे राष्ट्र में जो कुछ अच्छा है उसकी रक्षा करें और जो बेशुमार बुराइयां समाज में घुस गई हैं उनसे निर्भयतापूर्वक समाज को मुक्त करें। सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों का अध्ययन और उसकी चर्चा वे कर सकते हैं और उन्हें करनी चाहिये, क्योंकि वे प्रश्न हमारी पीढ़ी के लिये उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितना कि कोई बड़े से बड़ा राजनीतिक प्रश्न हो सकता है। किसी राष्ट्र-निर्माण के कार्यक्रम से राष्ट्र का कोई भी भाग अछूता नहीं रह सकता।

विद्यार्थियों को देश के करोड़ों मूक लोगों पर असर डालना होगा। उन्हें किसी प्रान्त, नगर, वर्ग या जाति की दृष्टि से नहीं, बल्कि एक महा-

द्वीप और करोड़ों लोगों की दृष्टि से विचार करना सीखना होगा; इन करोड़ों में अछूत, शराबी, गुंडे और वेश्यायें भी शामिल हैं, अपने बीच जिनके अस्तित्व के लिये हम सभी जिम्मेदार हैं। प्राचीन काल में विद्यार्थी ब्रह्मचारी अर्थात् ईश्वर के साथ और ईश्वर से डर कर चलने वाले कहलाते थे। राजा और बड़े-बूढ़े लोग उनका आदर करते थे। राष्ट्र स्वेच्छा से उनके पालन-पोषण और शिक्षा का खर्च उठाता था और बदले में वे राष्ट्र को सौ गुनी बलवान आत्मायें, सौ गुने बलवान मस्तिष्क और सौ गुनी बलिष्ठ भुजायें देते थे। आधुनिक संसार में गिरे हुए राष्ट्रों के विद्यार्थी उन राष्ट्रों के आशा-दीप समझे जाते हैं और वे जीवन के हर क्षेत्र में सुधार करनेवाले त्यागी नेता बन गये हैं। भारत में भी ऐसे विद्यार्थियों के उदाहरण मौजूद हैं। परन्तु वे इने-गिने हैं।

—यंग इण्डिया, ९-६-'२७; पृ० १८९

: २५ :

विद्यार्थी क्या कर सकते हैं ?

यह मेरे लिये बड़े हर्ष का और अनेक कठिनाइयों के समय सान्त्वना देनेवाला विषय रहा है कि समूचे भारत के विद्यार्थियों के हृदयों में मेरे लिये प्रेम है। विद्यार्थियों ने बड़ी हद तक मेरे बोझ को हलका कर दिया है। लेकिन मैं इस भावना को

अपने भीतर दबा नहीं सकता कि यद्यपि उनका मेरे प्रति जो प्रेम है उसे उन्होंने अनेक जगहों पर प्रकट किया है, यहां तक कि दरिद्रों के साथ भी उन्होंने एकता साधने की कोशिश की है, फिर भी अभी उनके लिये बहुत-कुछ करना बाक़ी है। काम का विशाल क्षेत्र उनके सामने पड़ा हुआ है। क्योंकि आप भविष्य की आशा हैं। जब आप अपने कॉलेजों और स्कूलों से बाहर निकलेंगे, तब आप लोगों को इस देश के ग़रीबों का नेतृत्व करने के लिये जन-सेवा के क्षेत्र में प्रवेश करना होगा। विद्यार्थियों! इसलिये मैं चाहता हूं कि आप उत्तरदायित्व की भावना रखें और उसका और अधिक स्पष्ट प्रदर्शन करें। यह उल्लेखनीय तथा खेदजनक बात भी है कि विद्यार्थियों की विशाल संख्या में जब वे विद्यार्थी-जीवन बिताते हैं तब उच्च भावनायें रहती हैं, लेकिन पढ़ाई समाप्त होते ही ये सब भावनायें लुप्त हो जाती हैं। उनमें से बहुत बड़ी संख्या के विद्यार्थी तो स्वार्थों के साधन में लग जाते हैं। इसके भीतर कोई न कोई दोष ज़रूर है। एक कारण तो स्पष्ट है। हर एक शिक्षा-शास्त्री ने, ऐसे हर आदमी ने जिसका सम्बन्ध विद्यार्थियों से रहा है, यह अनुभव कर लिया है कि हमारी शिक्षा-पद्धति दूषित है। उसका देश की आवश्यकताओं से कोई मेल नहीं है; सचमुच वह ग़रीब भारत की ज़रूरतों को पूरा नहीं करती। जो शिक्षण विद्यार्थियों को दिया जाता है, उसका सम्बन्ध उनके घर के जीवन तथा हमारे गांवों के जीवन से बिलकुल नहीं होता।

सच्ची शिक्षा का निर्माण

जो स्थिति आज है उसे मान कर हमें यह सोचना होगा कि देश सेवा के लिये विद्यार्थी क्या कर सकते हैं, साथ ही हम उस दिशा में अधिक क्या कर सक्ते हैं। मुझे और दूसरे बहुत से लोगों को, जो यह देखने के लिये उत्सुक हैं कि विद्यार्थी-जगत् अच्छा काम कर दिखाये, इस प्रश्न का यही उत्तर मिला है कि विद्यार्थियों को आत्म-निरीक्षण करना चाहिये और अपने व्यक्तिगत चरित्र की देखभाल करनी चाहिये। सच्ची शिक्षा का निर्माण करने के लिये व्यक्तिगत जीवन की शुद्धता एक अनिवार्य शर्त है। और हज़ारों विद्यार्थियों से मेरी जो मुलाक़ातें होती हैं और विद्यार्थियों से मेरा जो सतत पत्र-व्यवहार होता रहता है--जिसमें वे मुझ पर विश्वास करके अपने मन की बातें भी निःसंकोच कह डालते हैं--उससे मुझे बिलकुल स्पष्ट मालूम होता है कि अभी बहुत-कुछ करना बाक़ी है। मुझे विश्वास है कि आप मेरा मतलब पूरी तरह समझ रहे हैं। हमारी भाषा में विद्यार्थी शब्द का पर्यायवाची एक सुन्दर शब्द है---ब्रह्म-चारी।[1] और मुझे आशा है कि आप ब्रह्मचारी

---

[1] विद्यार्थी के लिए प्राचीन शब्द ब्रह्मचारी था, क्योंकि उसके सारे अध्ययन और प्रवृत्ति का उद्देश्य ब्रह्म की खोज होता था और वह अपने जीवन का निर्माण उस कठोर सादगी और संयम के ठोस आधार पर करता था, जिसका हर धर्म ने विद्यार्थी के लिये आदेश दिया है। जो अपने विकारों और वासनाओं को जवानी में बेलगाम छोड़ देता

शब्द का अर्थ जानते हैं। इसका अर्थ है ईश्वर की खोज करने वाला, ऐसा आचरण करने वाला जिसके द्वारा वह थोड़े से थोड़े समय में ईश्वर के निकट से निकट पहुंच जाय। और संसार के सभी महान धर्म, भले ही उनमें कितना भी मतभेद हो, इस बुनियादी बात पर बिलकुल सहमत हैं कि अशुद्ध हृदय वाला कोई भी व्यक्ति, स्त्री या पुरुष, उस महान् धवल सिंहासन के सामने पेश नहीं हो सकता। वेदों का हमारा सारा पांडित्य और पाठ, संस्कृत, लेटिन, ग्रीक आदि भाषाओं का सारा शुद्ध ज्ञान हमारे किसी काम में नहीं आयेगा, यदि उससे हमारे हृदय की सम्पूर्ण शुद्धि न होती हो। समस्त ज्ञान का ध्येय चरित्र-निर्माण होना चाहिये।

—*यंग इंडिया : ८-९-'२७*

: २६ :

व्यक्तिगत शुद्धता के पक्ष में दलील

यदि तुम्हारी शिक्षा सत्य और शुद्धता की ठोस नींव पर नहीं निर्मित होगी तो वह बिलकुल

है, वह उन्हें कभी क़ाबू में नहीं रख सकता। मैं यह नहीं चाहता कि आप खेलें-कूदें नहीं और अपनी कोठरी में बन्द रहें। परन्तु आपके सारे काम और खेल का ऊंचा उद्देश्य संयमी जीवन होना चाहिये। वे आपको ईश्वर के निकट ले जानेवाले हों।

—*यंग इंडिया : २१-७-'२७*

बेकार होगी। यदि तुम सब लड़के अपने निजी जीवन की शुद्धता की, मन, वचन और कर्म से शुद्ध रहने की चिन्ता नहीं करोगे, तो तुम चाहे पूर्ण और पारंगत पंडित क्यों न बन जाओ, लेकिन मैं बतलाता हूं कि तुम अपनी आत्मा को गंवा दोगे।

शुद्धता में सब से पहले तो हृदय की शुद्धता आती है; लेकिन जो कुछ हृदय में होता है, वह बाहर भी आता है और बाहरी कृत्यों और आचरण के रूप में प्रकट होता है। जो लड़का अपने मुंह को शुद्ध रखना चाहता होगा, वह एक भी गन्दे शब्द का उच्चारण नहीं करेगा। इतनी बात तो बिलकुल साफ़ है। लेकिन साथ-साथ वह किसी ऐसी बात को कहने से अपना मुंह बंद भी नहीं कर रखेगा, जिससे उसकी बुद्धि में उसके मन में कलुष पैदा हो और उसके दोस्तों को भी नुक़सान पहुंचाये।

बीड़ी-सिगरेट पीने की गलीज़ आदत

मैं जानता हूं कि बहुत से लड़के बीड़ी-सिगरेट पीते हैं। जहां तक इस धूम्रपान करने की गलीज़ आदत का सम्बन्ध है, हर कहीं लड़के बिगड़ते जा रहे हैं।....अगर तुम में से कोई धूम्रपान करते हों, तो आज से तुम यह बुरी आदत छोड़ दो। बीड़ी पीने से सांस गन्दी होती है। यह घृणित आदत है। जब बीड़ी पीने वाला रेलगाड़ी में होता है, तो कभी परवाह नहीं करता कि उसके आस-पास ऐसे स्त्री-पुरुष बैठे हैं, जो कभी बीड़ी नहीं पीते और उसके मुंह से आने वाली दुर्गन्ध उन्हें बुरी लग सकती है।

सिगरेट दूर से छोटी सी चीज़ हो सकती है, परन्तु जब सिगरेट का धुआं मुंह में जा कर बाहर आता है तब वह ज़हर होता है। बीड़ी पीने वाले यह परवाह नहीं करते कि कहां थूकना चाहिये। धूम्रपान से हमारी बुद्धि मंद हो जाती है। वह एक दुर्व्यसन है। अगर तुम डॉक्टरों से पूछो और वे अच्छे डॉक्टर हों, तो तुम्हें बतायेंगे कि बहुत से लोगों के केन्सर नामक विषैले फोड़े का कारण वह धुआं ही है या कम से कम उसकी जड़ में वही होता है।

जब धूम्रपान की ज़रूरत नहीं तो फिर उसे किया क्यों जाय? यह कोई खाद्य-पदार्थ तो है नहीं। इसमें कोई आनन्द भी नहीं। हां, शुरू-शुरू में दूसरे के बहकावे में आकर वैसा कुछ लगता होगा।

लड़को, तुम अच्छे लड़के हो और अपने माता-पिता और गुरु की आज्ञा मानते हो, तो धूम्रपान न करना और उससे जो बचत हो वह मेरे पास भारत के करोड़ों भूखों के लिये भेज देना।

—विथ गांधीजी इन सीलोन, पृ० ७६-७७

: २७ :

सिगरेट, चाय और काफ़ी पीना

ये चीज़ें जीवन के लिये ज़रूरी नहीं हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो प्रतिदिन १० प्याले कॉफ़ी के चढ़ा

जाते हैं। क्या उनके स्वस्थ विकास और कर्त्तव्य-पालन के ख़ातिर जागते रहने के लिये यह आवश्यक है? यदि जागते रहने के लिये कॉफ़ी या चाय पीना आवश्यक है, तो चाय या कॉफ़ी न पीकर सो जाना चाहिये। हमें इन चीज़ों का ग़ुलाम नहीं बनना चाहिये। परन्तु चाय या कॉफ़ी पीने वाले अधिकांश लोग उनके ग़ुलाम हैं। सिगार और सिगरेट विदेशी हों या देशी, उनसे बचना ही चाहिये। सिगरेट पीना अफ़ीम पीने के बराबर है और जो सिगार तुम पीते हो उसमें भी अफ़ीम का पुट होता है। वह तुम्हारे ज्ञानतंतुओं पर सवार हो जाती है और बाद में तुम उसे छोड़ नहीं सकते। कोई भी विद्यार्थी अपने मुंह को धुआंदानी बना कर गन्दा कैसे कर सकता है? यदि तुम सिगार और सिगरेट, चाय और कॉफ़ी पीने की आदतें छोड़ दो, तो तुम्हें ख़ुद पता चल जायगा कि तुम कितनी बचत कर सकते हो। टॉल्स्टॉय की कहानी में एक शराबी हत्या का अपना विचार कार्यान्वित करने में उस वक़्त तक हिचकिचाता है, जब तक वह अपनी सिगार नहीं पी लेता। लेकिन ज्यों ही पी लेता है, वह मुस्कुराता हुआ उठ खड़ा होता है और कहता है, 'मैं भी कैसा कायर हूं!' और ख़ंजर लेकर अपना काम कर डालता है। टॉल्स्टॉय ने अनुभव की बात कही है। उन्होंने ख़ुद अनुभव किये बिना कोई बात नहीं लिखी, और वे शराब से भी सिगार के ज़्यादा ख़िलाफ़ हैं। परन्तु यह समझने की भूल न करना कि शराब और तम्बाकू में छोटी बुराई है। नहीं।

दोनों में वैसा ही फ़र्क है, जैसा नागराज और सर्पराज में।

—*यंग इण्डिया : १५-६-'२७*

: २८ :

विद्यार्थी और चरित्र-निर्माण

आप जो शिक्षा पा रहे हैं, वह सारी व्यर्थ जायेगी, यदि उसकी नींव शुद्ध चरित्र पर बँधी हुई नहीं है।....कैसा अच्छा हो यदि हम शुद्ध चरित्र के नींव पर, पत्थर पर पत्थर रख कर जीवन रूपी ऐसा मकान बनायें, जिसको हम आगे चल कर हर्ष और गौरव से देख सकें।

लेकिन चरित्र का निर्माण चूने और पत्थर से नहीं हो सकता। इसका निर्माण तो आपके अपने ही हाथों से हो सकता है। आचार्य और प्राध्यापक-गण आपको पुस्तकों से चरित्र प्रदान नहीं कर सकते। चरित्र-निर्माण उनके अपने जीवन से होता है और सच पूछा जाय तो वह आपके भीतर से ही होना चाहिये।

जब मैं ईसाई धर्म, हिन्दू धर्म और संसार के दूसरे महान् धर्मों का अध्ययन कर रहा था, तब मैंने देखा कि धर्मों की इस अनन्त विविधता के बीच मौलिक एकता विद्यमान है, जिसे हम सब धर्मों में देखते हैं; और वह एकता है सत्य और निर्दोषता। आपको निर्दोषता का शाब्दिक अर्थ लेना चाहिये;

उसका अर्थ है किसी की हत्या न करना—अहिंसा। और यदि आप सत्य तथा निर्दोषता पर सदैव अचल खड़े रहेंगे, तो आप अनुभव करेंगे कि आपका निर्माण ठोस बुनियाद पर हुआ है।

—विथ गांधीजी इन सीलोन, पृ० ८६-६०; १६२७

: २६ :

इँटा-गारा ही नहीं

दक्षिण अफ़्रीक़ा और भारत दोनों जगहों की शिक्षा-संस्थाओं के बारें में थोड़ा-बहुत जान लेने के बाद में तुम लोगों को बतलाना चाहूंगा कि शालेय शिक्षा ही इँटा-गारा नहीं है। उल्टे सच्चे लड़के और लड़कियां ही धीरे-धीरे ऐसी संस्थाओं को निर्मित करती हैं। पढ़ाई-लिखाई की ऐसी बड़ी-बड़ी संस्थाओं को मैं जानता हूं, जिनकी इमारतें लम्बी-चौड़ी और बहुत ही सुन्दर हैं, लेकिन असलियत यह है कि वे शिक्षा का पाखंड भर करती हैं। उल्टे मैं कुछ ऐसी संस्थाओं को भी जानता हूं, जिन्हें अपने दिन प्रतिदिन के भौतिक अस्तित्व के लिये संघर्ष करना पड़ता है, लेकिन जो इस अभाव के कारण ही आध्यात्मिक दृष्टि से दिन प्रतिदिन आगे बढ़ते चल रहे हैं। दुनिया के सबसे महान् गुरुओं में से एक (गौतम बुद्ध) ने अपना जीवन सन्देश मनुष्य के हाथों बनायी गयी किसी इमारत पर से नहीं, एक विशाल पेड़ की छाया में दिया था।

निर्भय होकर सत्य पालन करो

आप कह सकते हैं कि मैं बहुत से लड़के-लड़कियों का, आप यहां तक कह सकते हैं कि हज़ारों बालक-बालिकाओं का, पिता हूं। उस हैसियत से मैं आप लड़कों से कहना चाहता हूं कि आख़िर तो आपका भाग्य आपके अपने ही हाथों में है। मुझे इसकी परवाह नहीं है कि आप अपनी पाठशाला में क्या सीखते हैं या क्या नहीं सीखते, यदि आप दो शर्तों का पालन करते हैं। एक शर्त यह है कि चाहे कोई भी अवस्था हो और कैसी भी भारी कठिनाइयां सामने हों, तो भी आपको निर्भय होकर सत्यपालन करना चाहिये। एक सत्यशील लड़का, बहादुर लड़का, मक्खी को भी चोट पहुंचाने का कभी विचार नहीं करेगा। वह अपनी पाठशाला के तमाम कमज़ोर लड़कों की रक्षा करेगा और जिन्हें पाठशाला के भीतर या बाहर उसकी मदद की ज़रूरत होगी उन सबकी सहायता करेगा। जो लड़का व्यक्तिगत रूप में मन, शरीर और कर्म से शुद्धता का पालन न करे, उसे किसी भी पाठशाला से निकाल देना चाहिये। वीर बालक सदा अपना मन पवित्र, आंखें सीधी और हाथ पवित्र रखेगा। जीवन की ये बुनियादी शिक्षायें ग्रहण करने के लिये आपको किसी स्कूल में जाने की आवश्यकता नहीं है; और यदि आप में यह त्रिविध चरित्र है, तो आपका निर्माण ठोस बुनियाद पर होगा।

इसलिये सच्ची अहिंसा और शुद्धता ही

तुम्हारे जीवन में सदा तुम्हारा रक्षक बने ! तुम्हें अपनी ऊंची महत्त्वाकांक्षा को पूरी करने में ईश्वर सहायक हो।

—विथ गांधीजी इन सीलोन : पृ० १०१

: ३० :

पवित्र जीवन का रहस्य

सत्यता ही मूल मंत्र है। कोई भी परिस्थिति क्यों न आ जाय, झूठ मत बोलिये। कुछ भी गुप्त मत रखिये, अपने गुरु जन और बड़ों पर पूरा विश्वास कीजिये और उनसे हर बात क़बूल दीजिये। किसी से भी द्वेष मत रखिये, किसी की बुराई उसके पीठ-पीछे मत कीजिये, सबसे बढ़ कर स्वयं अपने प्रति सच्चे बनिये, जिससे दूसरे किसी के प्रति भी आप झूठे न बन जायं। जीवन की छोटी से छोटी बातों में भी सचाई का व्यवहार ही पवित्र जीवन का एक मात्र रहस्य है।

—यंग इंडिया : १०-१२-१६२५

: ३१ :

नैतिक अशुद्धता का रोग

एक पलड़े पर आप अपने संपूर्ण ज्ञान, शिक्षण और विद्वत्ता को रखें और दूसरे पर सत्य और

शुद्धता को रखें, तो सत्य और शुद्धता का वज़न ज्ञान, शिक्षण और विद्वत्ता के वज़न से कहीं ज़्यादा होगा। नैतिक अशुद्धि का रोग आज हमारे स्कूल जाने वाले बालकों में फैल गया है और गुप्त महा-मारी के समान उनका भयंकर ह्रास कर रहा है। यदि आप धर्मग्रंथों की शिक्षाओं-उपदेशों को अपने दैनिक जीवन में उतारने में असफल रहे, तो आपकी सारी विद्वत्ता, उन ग्रंथों का आपका सारा अध्ययन व्यर्थ जायेगा।

यदि शिक्षक अपने विद्यार्थियों को संसार का सारा ज्ञान प्रदान करें, लेकिन सत्य तथा शुद्धता की भावना उनमें पैदा न करें, तो कहा जायगा कि उन्होंने विद्यार्थियों को धोखा दिया है और उन विद्यार्थियों को ऊंचा उठाने के बजाय भयंकर विनाश के मार्ग पर ढकेल दिया है।

चरित्र के अभाव में ज्ञान केवल बुराई को पैदा करने वाली शक्ति बन जाता है, जैसा कि हम अनेक बुद्धिशाली चोरों तथा 'शिष्ट धूर्तों' के उदाहरणों में पाते हैं।

—यंग इंडिया : २१-२-'२६

: ३२ :

सच्ची शिक्षा की पहली सीढ़ी

मैं हज़ारों विद्यार्थियों के सम्पर्क में आया हूं। उन्होंने मुझ पर विश्वास करके अपने अत्यन्त

भीतरी भेद मुझे बताये हैं और अपने दिलों में घुसने का मुझे हक़ दिया है। इसलिये मैं आपकी तमाम कठिनाइयां और हर एक कमज़ोरी जानता हूं। मुझे यह पता नहीं है कि मैं आप की कोई कारगर मदद कर सकता हूं या नहीं। मैं केवल आपका हितैषी और पथप्रदर्शक बन सकता हूं, आपके रंज में शरीक होने की कोशिश कर सकता हूं और अपने अनुभव का लाभ आप को दे सकता हूं, यद्यपि आप जानते ही हैं कि निर्बल के बल राम ही हैं। मनुष्य के लिये इससे बढ़ कर सजा और अभाग्य और क्या हो सकता है कि उसका ईश्वर में से विश्वास उड़ जाय? और मैं गहरे दुःख की भावना से स्वीकार करता हूं कि विद्यार्थी-जगत् से श्रद्धा धीरे-धीरे उठती जा रही है। जब मैं किसी हिन्दू लड़के को राम-नाम का आश्रय लेने का सुझाव देता हूं, तो वह मेरे मुंह की ओर देखने लगता है और आश्चर्य में पड़ जाता है कि राम कौन है; जब मैं किसी मुसलमान लड़के से क़ुरान पढ़ने और खुदा से डरने को कहता हूं, तो वह स्वीकार करता है कि वह क़ुरान नहीं पढ़ सकता और अल्लाह तो केवल कहने की बात है। ऐसे लड़कों को मैं कैसे विश्वास दिला सकता हूं कि सच्ची शिक्षा की पहली सीढ़ी शुद्ध हृदय है? अगर आप को मिलने वाली शिक्षा आपको ईश्वर से विमुख करती है, तो मैं नहीं जानता कि उससे आप को कैसे सहायता मिलेगी और आप संसार की कैसे मदद करेंगे। आप ने अपने अभिनंदन-पत्र में ठीक कहा है कि मैं मानव-जाति की सेवा द्वारा ईश्वर-दर्शन का प्रयत्न

कर रहा हूं। क्योंकि मुझे मालूम है कि ईश्वर न तो आकाश में है और न पाताल में है, परन्तु प्रत्येक में है—भले ही वह हिन्दू हो, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या पंचम हो, मुसलमान हो, पारसी हो, ईसाई हो, पुरुष हो या स्त्री हो।

—यंग इंडिया : ४-८-'२७

: ३३ :

परमात्मा का भरोसा न छोड़ो

इसलिये मैं लड़कों और लड़कियों से कहता हूं कि परमात्मा का कभी भरोसा न छोड़ो और इसलिये अपना भी नहीं और याद रक्खो कि अगर तुमने अपने मन में एक भी बुरे विचार को जगह दी तो तुम में विश्वास की कमी है। असत्य, अनुदारता, हिंसा, विषय विकार—ये सब बातें वह विश्वास न होने पर ही आती हैं। श्री भगवद्गीता में यही बात हर श्लोक में कही गई है। अगर मैं ईसा के गिरिशिखर पर के उपदेश का सारांश दूं तो वह भी यही है। क़ुरान में भी मैंने वही बात देखी है।

हम स्वयं अपने को जितनी हानि पहुंचा सकते हैं, उतना दूसरा कोई नहीं पहुंचा सकता। इस दुनिया में कोई पापकार्य पापपूर्ण विचार की प्रेरणा के बिना नहीं किया गया है। आप के दिल में उठने वाले हर एक विचार की जांच आप को सावधानी से करनी चाहिये।

कई विद्यार्थियों ने, लड़कों और लड़कियों दोनों ने, मुझ से कहा है कि उनकी बुद्धि तो मेरी बातों को क़बूल करती है, लेकिन अपने विचारों पर क़ाबू रखना उनके लिये असंभव होता है और इसीलिये अन्त में वे हार मान लेते हैं, निराश हो जाते हैं और तब अपने आप को उत्तेजित करने के लिये कुछ पुस्तकें खोज कर वे पापपूर्ण विचारों का पोषण करते हैं।

हम सभी के भीतर दो प्रक्रियायें चलती हैं। उनका भेद मैं आपको साफ़-साफ़ समझा देना चाहता हूं। सिद्धों और सन्तों को छोड़ कर बाक़ी सबके मन में बुरे विचार उठेंगे ही। इसलिये हमें ईश्वर से निरन्तर प्रार्थना करनी चाहिये कि 'हे परमात्मा, हमें बुरे विचारों से मुक्त रख।' यह प्रक्रिया हमारा लाभ करती है। दूसरी प्रक्रिया है बुरे विचारों के बारे में सोचना और उन्हीं में मग्न रहना। यह अत्यन्त खतरनाक और हानिकारक प्रक्रिया है और मैं इस प्रक्रिया से सारी शक्ति लगा कर लड़ने का निमंत्रण आपको देता हूं। यह आसान से आसान काम है। क्योंकि हम में से प्रत्येक यह चुनाव कर सकता है कि कैसे विचारों को हम अपने भीतर बुलायेंगे या प्रोत्साहित करेंगे।

हम शत्रु की चोट से भले ही न बच सकें, मगर उसे रोकने के प्रयत्न में मर जाना तो हमारे हाथ में है। यह एक नुस्ख़ा है। दूसरा नुस्ख़ा है, भूखों मरने वाले करोड़ों लोगों के लिये रोज़ आधा घंटा सूत कातना।

आप परमात्मा में अपनी श्रद्धा कभी न छोड़ें और इसलिये अपने में भी श्रद्धा रखना कभी न छोड़ें; याद रखिये कि अगर आपने अपने मन में एक भी बुरे विचार को जगह दी, तो समझिये कि आप में उस श्रद्धा की कमी है। असत्य, अनुदारता, हिंसा, विषय-विकार—ये सब बातें उस श्रद्धा के न होने पर ही आती हैं।

—हिन्दी नवजीवन : ३-११-'२७

: ३४ :

विद्यार्थी और गीता

उस दिन बातचीत के दौरान में एक पादरी मित्र ने मुझसे पूछा कि 'यदि भारत सचमुच आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत देश है, तो यह क्या बात है कि मैं ऐसे थोड़े से ही विद्यार्थी पाता हूं जिन्हें अपने धर्म का, भगवद्गीता तक का कुछ भी ज्ञान हो।' इस कथन के समर्थन में उन मित्र ने, जो स्वयं एक शिक्षाशास्त्री हैं, मुझसे कहा कि 'मुझसे जो विद्यार्थी मिलते हैं उनसे मैं यह ज़रूर पूछ लेता हूं कि तुम्हें अपने धर्म का या भगवद्गीता का ज्ञान है या नहीं। उनमें से बहुत ज़्यादा लोगों को ऐसा कोई ज्ञान नहीं होता।'

धार्मिक शिक्षा

इस अवसर पर मेरा इस निष्कर्ष पर विचार

करने का इरादा नहीं है कि चूंकि कुछ छात्रों को अपने ही धर्म का ज्ञान नहीं है, इसलिये भारत आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत देश नहीं है। मैं इतना ही कहूंगा कि छात्रों में धार्मिक पुस्तकों के अज्ञान का ज़रूरी तौर पर यह अर्थ नहीं है कि विद्यार्थी जिन लोगों में से हैं उनमें कोई धार्मिक जीवन या आध्यात्मिकता ही नहीं है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि सरकारी शिक्षा-संस्थाओं से निकलने वाले अधिकांश विद्यार्थी किसी भी धार्मिक शिक्षा से[1] वंचित रहते हैं। पादरी महाशय के वचनों का सम्बन्ध मैसूर के छात्रों से था और मुझे यह देख कर कुछ पीड़ा हुई कि मैसूर के विद्यार्थियों को भी

---

[1] "मैंने यह समझने के खातिर कि धार्मिक शिक्षा देने का उत्तम तरीक़ा क्या है, बहुत से लड़कों पर प्रयोग किये हैं। जहां मुझे यह पता लगा कि किताबी तालीम कुछ सहायक होती है, वहां मैंने यह भी जाना कि अपने-आप में अर्थात् अकेली वह बेकार है। मैंने पाया कि धार्मिक शिक्षा वे ही गुरु दे सकते हैं, जो स्वयं धर्ममय जीवन व्यतीत करते हैं। मैंने देखा है कि लड़कों को शिक्षक जो पुस्तकें पढ़ाते या अपनी ज़बान से जो व्याख्यान देते हैं, उनकी अपेक्षा जो जीवन शिक्षक स्वयं व्यतीत करते हैं उससे लड़के अधिक ग्रहण करते हैं। मुझे यह देखकर बड़ा हर्ष हुआ कि लड़के-लड़कियों में अनजाने ही लोगों के मन में प्रवेश करने की एक ऐसी शक्ति होती है, जिसके द्वारा वे अपने शिक्षकों के विचार जान लेते हैं। वह शिक्षक अभागा है, जो मुख से एक बात पढ़ाता है और हृदय में दूसरी ही रखता है!"

—*विथ गांधीजी इन सीलोन : पृ० १०८-०९*

राज्य की पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा नहीं मिलती। मुझे यह भी मालूम है कि एक ऐसी विचारसारिणी है, जो सार्वजनिक पाठशालाओं में, केवल धर्म निरपेक्ष शिक्षा देने में ही विश्वास रखती है। मैं यह भी जानता हूं कि भारत जैसे देश में जहां संसार के अधिकांश धर्मों का प्रतिनिधित्व है और जहां एक ही धर्म में इतने अधिक सम्प्रदाय हैं, धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था करने के बारे में अवश्य कठिनाई होगी। परन्तु यदि भारत को रूहानी दिवालियापन घोषित नहीं करना है, तो उसके युवक-युवतियों की धार्मिक शिक्षा कम से कम उतनी ज़रूरी अवश्य मानी जानी चाहिये, जितनी लौकिक शिक्षा। यह सच है कि धार्मिक पुस्तकों का ज्ञान और धर्म का ज्ञान दोनों एक ही चीज़ नहीं है। परन्तु हमें धर्म नहीं मिल सकता हो तो अपने लड़के-लड़कियों को उससे उतरती हुई दूसरी चीज़ देकर ही सन्तोष करना होगा; और ऐसी शिक्षा स्कूलों में दी जा सके या न दी जा सके, फिर भी वयस्क छात्रों को अन्य विषयों की भांति धार्मिक मामलों में भी स्वावलम्बन की कला सीख लेनी चाहिये। जैसे उनकी अपनी वाद-विवाद सभाएं और अब कताई-मंडल हैं, वैसे वे अपनी धार्मिक कक्षायें जारी कर सकते हैं।

गीता का सार्वत्रिक प्रभाव

मेरी राय में गीता समझने के लिये बहुत ही आसान पुस्तक है। वह कुछ मौलिक समस्यायें ज़रूर उपस्थित करती है, जिनका हल बेशक कठिन

है। परन्तु मेरे मतानुसार गीता के साधारण अर्थ के बारे में कोई भूल नहीं हो सकती। समस्त हिन्दू सम्प्रदाय उसे प्रमाण मानते हैं। वह हर प्रकार की कट्टरता से मुक्त है। थोड़ी सी जगह में वह सम्पूर्ण युक्तियुक्त नैतिक नियमावली दे देती है। उससे बुद्धि और हृदय दोनों को सन्तोष होता है। इस प्रकार वह दार्शनिक और भक्तिपूर्ण दोनों है। उसका प्रभाव सार्वत्रिक है। उसकी भाषा निहायत ही आसान है। फिर भी मेरे ख़्याल से उसका हर देशी भाषा में अधिकृत संस्करण होना चाहिये और अनुवाद इस प्रकार तैयार होने चाहिये कि उनमें बारीक़ सैद्धान्तिक चर्चा न आये और गीता की शिक्षा साधारण आदमियों की समझ में आ जाय। इस सुझाव का उद्देश्य किसी भी प्रकार यह नहीं है कि अनुवाद मूलग्रंथ का पूरक हो सकता है। कारण, मैं अपना यह मत दोहराता हूं कि प्रत्येक हिन्दू लड़के और लड़की को संस्कृत[१]

---

[१] "संस्कृत की पढ़ाई की दुःखद उपेक्षा की जा रही है। मैं उसी पीढ़ी का हूं जो पुरानी भाषाओं की पढ़ाई में विश्वास करती थी। मैं यह नहीं मानता कि यह समय और मेहनत का दुरुपयोग है। मैं यह मानता हूं कि इससे आधुनिक अध्ययन में सहायता मिलती है। जहां तक भारत का सम्बन्ध है, यह कथन दूसरी पुरानी भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत के बारे में कहीं अधिक सच्चा उतरता है, और राष्ट्रवादी को इसे पढ़ना चाहिए क्योंकि इसके ज्ञान से दूसरी प्रांतीय भाषाओं की पढ़ाई बहुत सरल हो जाती है। यह वह भाषा है जिसमें हमारे पूर्वज सोचते और लिखते थे। अगर

जानना चाहिये। परन्तु अभी बहुत समय तक लाखों लोग संस्कृत के ज्ञान से विहीन रहेंगे। उन्हें संस्कृत न जानने के कारण भगवद्गीता की शिक्षा से वंचित रखना आत्म-घातक होगा।

—यंग इंडिया : २५-८-'२७

: ३५ :

गीता पढ़ने के लिये आवश्यक तैयारी

मैं भगवद्गीता के श्रद्धापूर्ण अध्ययन के बराबर बलदायक और किसी चीज़ की कल्पना नहीं कर सकता और यदि विद्यार्थी यह याद रखें कि उन्हें संस्कृत के ज्ञान का या गीता के ज्ञान का भी दिखावा करने के लिये उसे नहीं सीखना है, तो उन्हें मालूम हो जायगा कि वे उसे आध्यात्मिक शांति प्राप्त करने और अपने सामने आने वाली नैतिक कठिनाइयां हल करने के लिये सीखते हैं। कोई भी मनुष्य, जो पूज्य भाव से उस पुस्तक के अध्ययन में प्रवृत्त होता है, राष्ट्र का और उसके द्वारा मानव-जाति का सच्चा सेवक बने बिना नहीं रह सकता।

गीता में कर्म का उपदेश है, भक्ति का उपदेश

किसी भी हिन्दू लड़के या लड़की ने अपने धर्म की आत्मा को समझ लिया है तो वह संस्कृत का आरंभिक ज्ञान तो जरूर पा लेगा।"

—हरिजन, २३ मार्च, १९४०

है और ज्ञान का उपदेश है। जीवन में इन तीनों का सामंजस्य होना चाहिये। परन्तु सेवा का उपदेश सबका आधार है। और जो लोग देश की सेवा करना चाहते हैं, उनके लिये इससे ज़्यादा जरूरी और क्या हो सकता है कि वे उस अध्याय से आरम्भ करें जिसमें कर्म के उपदेश की मीमांसा की गई है। परन्तु यह आरम्भ आपको पांच आवश्यक साधनाओं अर्थात् अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अस्तेय के साथ करना चाहिये। तभी, और केवल तभी, आप गीता का ठीक-ठीक अर्थ समझ सकेंगे। और फिर आप उसे पढ़ेंगे तो आपको उसमें अहिंसा दिखाई देगी, न कि हिंसा, जैसा आजकल बहुत लोग देखने का प्रयत्न करते हैं। आवश्यक तैयारी के साथ आप उसे पढ़ें, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपको वह शांति मिलेगी, जिसका आपको पहले कभी पता भी नहीं होगा।

—यंग इंडिया, ३-११-'२७

: ३६ :

गीता की शिक्षा

हमारे विद्यार्थी छोटी-छोटी बातों पर परेशान हो जाते हैं। परीक्षा में फेल हो जाने जैसी छोटी सी बात उन्हें घोर निराशा में डाल देती है। गीता सामने असफलता आती देखकर भी धैर्य के साथ

अपना कर्त्तव्य करते चलना सिखलाती है। वह हमें बतलाती है कि हमें कर्म करने भर का अधिकार है, उसके फल का नहीं, और सफलता-विफलता दोनों मूल में एक ही चीज़ है। वह हमें तन, मन और आत्मा से शुद्ध कर्त्तव्य के प्रति अपने को विसर्जित कर देने को ललकारती है, न कि समय-समय पर उठती रहने वाली अपनी इच्छाओं और अनुशासन-हीन आवेग के गुलाम बन कर दिमाग़ी विलास करना सिखाती है। एक सत्याग्रही के रूप में मैं यह दावे से कह सकता हूं कि गीता से मुझे नित नयी शिक्षायें मिलती रही हैं। अगर कोई मुझसे कहे कि यह मेरा भ्रम है तो उसको मेरा जवाब यह होगा कि मैं इस भ्रम को ही अपनी सबसे बड़ी निधि मान कर गले लगाता हूं।

गीता का अध्ययन

मैं तो विद्यार्थियों को यही राय दूंगा कि वे हर रोज़ सबेरे सबेरे गीता का पाठ किया करें। मैं तुलसीदास का प्रेमी और भक्त हूं। मैं उस महान् आत्मा की स्तुति करता हूं, जिसने दुःखी संसार को हर रोग का निवारक मंत्र राम नाम दिया। लेकिन मैं आज यहां तुम्हारे सामने तुलसीदास को रखने के इरादे से नहीं आया हूं, बल्कि तुमसे यह कहने कि गीता को पढ़ो, दोष-दर्शन या आलोचना करने के लिये नहीं, बल्कि श्रद्धा और भक्ति के साथ। इस तरीक़े से तुम गीता के पास जाओगे तो वह तुम्हारी हर इच्छा पूरी करेगी। मैं यह मानता हूं कि अठारहों अध्यायों

को कण्ठस्थ कर लेना कोई मज़ाक़ नहीं है, लेकिन इसकी कोशिश तो करने लायक़ है। एक बार तुम इसकी मधुर सुधा का पान कर लोगे तो दिन पर दिन इसके लिये तुम्हारा लगाव बढ़ता चला जायेगा। गीता के श्लोकों के पाठ से तुम्हें तुम्हारे जीवन की परीक्षाओं में सहायता मिलेगी, परेशानियों में ढाढ़स मिलेगा, चाहे तुम कहीं एक दम अकेले अंधकार में बंद ही क्यों न रहो। और अगर अपने होंठों पर इन श्लोकों को लिये हुए आपको जीवन का अंतिम आह्वान मिल जाय और प्राण त्यागना पड़ जाय तो तुम्हें ब्रह्म-निर्वाण मोक्ष प्राप्त हो जायेगा।

—हरिजन, २४ अगस्त, १९३४

: ३७ :

अमोघ औषधि

डॉ० मोट—आप ऐसे नौजवानों को क्या सलाह देते हैं जो अपने भीतर अवगुणों से लड़ रहे हों और हारते जा रहे हों और आपसे परामर्श करें?

गांधीजी—केवल प्रार्थना। हर व्यक्ति को स्वयं को बहुत ही तुच्छ मान कर शक्ति के लिये अपने से परे देखना चाहिये।

डॉ० मोट—लेकिन अगर नौजवान लोग यह

कहें कि उनकी प्रार्थना सुनी नहीं जाती और ईश्वर निर्दय हो गया है, तो क्या कहा जाय?

गांधीजी—अपनी प्रार्थना के लिये उत्तर की उपेक्षा करना भगवान को ललचाना है। अगर प्रार्थना से शांति न मिली तो वह ज़बानी प्रार्थना भर है। अगर प्रार्थना सहायक न हुई तो और कोई सहायक न होगा। प्रार्थना तो निरन्तर करते ही जाना चाहिये। नौजवानों को मेरा यही सन्देश है। जो भी हो जाय, नौजवानों को प्रेम और सत्य की सर्व विजयी शक्ति में विश्वास अकारण करते रहना चाहिये।

डॉ० मोट—हमारे नौजवानों के सामने कठिनाई यह है कि विज्ञान और आधुनिक दर्शन की पढ़ाई से उनकी श्रद्धा समाप्त हो गयी है, और वे अविश्वास की आशा में मुग्ध हो उठे हैं।

गांधीजी—इसकी वजह यह है कि वे श्रद्धा के लिये बुद्धि से प्रयत्न करते हैं, आत्मा से उसे अनुभव नहीं करते। बुद्धि हमें जीवन के संघर्ष में कुछ दूर तक ज़रूर ले चलती है, लेकिन, संकट के समय वह हमारा साथ नहीं दे पाती। श्रद्धा तर्क से परे है। जबकि क्षितिज पर गहरा अंधेरा छा जाता है और मनुष्य की तर्क-बुद्धि धराशायी हो जाती है, तभी श्रद्धा का प्रकाश उज्ज्वलतम होता है और हमारी रक्षा करता है। हमारे नौजवानों को श्रद्धा की आवश्यकता है, और यह तभी मिलती है जबकि मनुष्य अपने बुद्धि-बल का सारा अभिमान त्याग दे और स्वयं को ईश्वर के इच्छाधीन छोड़ दे।

—यंग इंडिया : २१ मार्च, १६२६

: ३८ :

प्रार्थना पर उपदेश

मैं मानता हूं कि प्रार्थना धर्म की आत्मा और उसका सार है, और इसलिये प्रार्थना मनुष्य के जीवन का मर्म बन जानी चाहिये। क्योंकि कोई भी मनुष्य धर्म के बिना जी नहीं सकता। कुछ लोग ऐसे हैं, जो अपनी बुद्धि के अहंकार में कहते हैं कि हमारा धर्म से कोई वास्ता नहीं। लेकिन यह उस आदमीकी-सी बात है, जो कहता है कि मैं सांस तो लेता हूं, परन्तु मेरे नाक नहीं है। बुद्धि से हो या स्वभाव से या अंधविश्वास से हो, मनुष्य दिव्य तत्त्व के साथ किसी न किसी तरह का सम्बन्ध स्वीकार करता है। घोर से घोर अज्ञेयवादी या नास्तिक भी किसी नैतिक सिद्धान्त की आवश्यकता अवश्य स्वीकार करता है और उसका पालन करने में कुछ न कुछ भलाई और न पालन करने में बुराई मानता है।

मनुष्य के जीवन का सार

अब मैं दूसरी बात पर आता हूं, वह है कि प्रार्थना मनुष्य के जीवन का सार है। क्योंकि वह धर्म का अति आवश्यक अंग है। प्रार्थना या तो याचना है या विस्तृत अर्थ में ईश्वर से भीतरी लौ लगाना है। दोनों ही सूरतों में अंतिम परिणाम एक ही होता है। जब वह याचना के रूप में होती है, तब भी याचना आत्मा की सफ़ाई और शुद्धि के

लिये, जो अज्ञान और अंधकार उसे घेरे रहते हैं, उससे मुक्ति पाने के लिये होनी चाहिये। इसलिये जिसे अपने भीतर के देव को जगाने की भूख है, उसे प्रार्थना का आसरा लेना ही पड़ेगा। परन्तु प्रार्थना खाली शब्दों या कानों का व्यायाम नहीं है, कोरे मंत्रों का रटना नहीं है। रामनाम कितना ही रटा जाय, यदि उससे आत्मा जाग्रत नहीं होती तो वह व्यर्थ है। प्रार्थना में हृदयरहित शब्दों की अपेक्षा शब्दरहित हृदय होना अच्छा है। वह साफ़ तौर पर उस आत्मा की पुकार होनी चाहिये, जो उसकी भूखी है। और जैसे एक भूखे आदमी को भरपेट भोजन में मज़ा आता है, वैसे ही हार्दिक प्रार्थना में भूखी आत्मा को मज़ा आयेगा। और मैं अपना और अपने साथियों का थोड़ा-सा अनुभव बताते हुए कहता हूं कि जिसने प्रार्थना के जादू का अनुभव किया है वह कई दिनों तक लगातार भोजन के बिना रह सकता है, मगर प्रार्थना के बिना क्षणभर भी नहीं रह सकता। कारण, प्रार्थना के बिना भीतरी शांति नहीं मिलती।

सतत द्वंद्व

मैंने प्रार्थना की आवश्यकता का ज़िक्र किया है और उसके द्वारा प्रार्थना के सार का विवेचन भी। हमने अपने मानव भाइयों की सेवा के लिये जन्म लिया है और यदि हम पूरी तरह जाग्रत न रहें तो वह सेवा ठीक तरह से नहीं कर सकते। मनुष्य के हृदय में अंधकार और प्रकाश की शक्तियों में सतत द्वंद्व चलता रहता है और जिसने प्रार्थना

का सहारा नहीं पकड़ा है वह अंधकार की शक्तियों का शिकार बन जायगा। प्रार्थना करने वाले मनुष्य को भीतरी और बाहरी दोनों तरह की शांति रहेगी। जो मनुष्य प्रार्थनामय हृदय के बिना दुनियादारी के कामों में लगा रहेगा, वह स्वयं दु:खी होगा और दुनिया को भी दु:खी करेगा। इसलिये मनुष्य की मरणोत्तर स्थिति पर प्रार्थना का क्या असर पड़ता है, इस बात को छोड़ दिया जाय तो भी इस जीवित संसार में मनुष्य के लिये प्रार्थना का अपार मूल्य है। हमारे दैनिक कार्यों में व्यवस्थितता, शांति और स्थिरता लाने का प्रार्थना ही एकमात्र उपाय है।

दिवसारम्भ प्रार्थना के साथ करो

इसलिये आप अपना दिवसारम्भ प्रार्थना के साथ कीजिये और उसमें अपना हृदय इतना उंड़ेल दीजिये कि वह शाम तक आपके साथ रहे। दिन का अंत प्रार्थना के साथ कीजिये जिससे आपको स्वप्नों और दु:स्वप्नों से मुक्त शांतिपूर्ण रात्रि नसीब हो। प्रार्थना के स्वरूप की चिन्ता न कीजिये। स्वरूप कुछ भी हो, वह ऐसा होना चाहिये, जिससे हमारी भगवान के साथ लौ लग जाय। इतनी ही बात है कि प्रार्थना का रूप चाहे जो हो, जिस समय आपके मुंह से प्रार्थना के शब्द निकलें, उस समय मन इधर-उधर न भटके।

अनुशासन और संयम

यदि मैंने जो कुछ कहा है वह आपको पट

गया हो तो आप तब तक चैन नहीं लेगें, जब तक कि आप अपने छात्रावास के संचालकों को आपकी प्रार्थना में दिलचस्पी लेने के लिये मजबूर नहीं कर दें, और प्रार्थना अनिवार्य न बना दी जाय। अपने-आप लगाई हुई पाबन्दी जब्र नहीं है। जो आदमी संयम से मुक्त रहने का अर्थात् इंद्रियों के भोग का रास्ता चुन लेता है, वह विकारों का क्रीतदास रहेगा और जो आदमी अपने को नियमों और पाबन्दियों से बांध लेता है वह मुक्त हो जाता है। विश्व की तमाम वस्तुयें, जिन में सूर्य, चन्द्र और तारे भी हैं, निश्चित नियमों का पालन करती हैं। इन नियमों के नियमन के बिना संसार का काम एक क्षण भी नहीं चलेगा। आप, जिनका जीवन-ध्येय अपने मानव बंधुओं की सेवा करना है, नष्ट-भ्रष्ट हो जायेंगे, यदि आप अपने पर किसी न किसी प्रकार का अनुशासन नहीं लगायेंगे; और प्रार्थना एक आवश्यक आध्यात्मिक अनुशासन है। अनुशासन और संयम ही हमें पशुओं से अलग करते हैं। यदि हमें सिर ऊंचा करके चलने वाले मनुष्य बनना है और जानवरों की तरह हाथ-पैरों के बल नहीं चलना है, तो हमें समझ-बूझ कर अपने-आपको स्वेच्छापूर्ण अनुशासन और संयम के अधीन रख देना चाहिये।

—यंग इंडिया : २३-१-'३०

: ३६ :

नौजवान आत्म-नियंत्रण सीखें

आज के नौजवान को आत्म-नियंत्रण तथा आराम और सुख-भोग में से एक को चुनना है। इनमें से एक मुक्ति और स्वतंत्रता की राह दिखाता है, दूसरा सत्यानाश का। दोनों के रास्ते अलग हैं। विलास के विष से भरा हुआ, लेकिन चटकीले रूप में पेश किया गया साहित्य पश्चिम से हमारे देश में बाढ़ की तरह उमड़ता चला आ रहा है और यहीं हमारे नौजवानों को पूरा चौकस रहने की ज़रूरत आ पड़ती है। आज का ज़माना उनके लिये आदर्शों का उलट-फेर का और परीक्षाओं का ज़माना है। और संसार के लिये, उसके नौजवानों के लिये और विषेशत: भारत के नौजवानों के लिये इस संकट की अवस्था में जो सबसे ज़्यादा ज़रूरी है वह है टॉल्स्टॉय का प्रगतिशील आत्मनियंत्रण, क्योंकि इसी से हर व्यक्ति, हर देश और सारा संसार सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त कर सकेगा।

नौजवानों के सामने उनकी परीक्षा अभी हुई है, और वह है जीवन के विश्वविद्यालय में डिप्लोमा पाने की जिसमें तमाम जाल बिछे हैं, गड्ढे बिखरे पड़े हैं और पग-पग पर परीक्षायें हैं। इसी परीक्षा को पास किये बिना स्कूली डिग्रियां बेकार हैं।

सेवा को अपना आदर्श बनाने वाला अपनी शारीरिक भूख को लगातार कम करता जायेगा; और हालांकि जैसा कि टॉल्स्टॉय का अनुभव था,

पूर्ण आत्म-नियंत्रण की प्राप्ति लगातार उतनी ही दूर बनी रहती है, फिर भी वह धैर्य के साथ प्रयत्न करता ही रहेगा- और इस सतत प्रयत्न को ही जीवन का लक्ष्य मानेगा। फ़रहाद ने शीरीं की तलाश में चट्टानों के बीच अपनी जिंदगी ही गंवा दी थी। तो क्या अपनी सत्य रूपी शीरीं के लिये, जिसके बिना सेवा सम्भव ही नहीं, क्या हम फ़रहाद से पीछे रहेंगे ?

—यंग इन्डिया : २० दिसम्बर, १६२८

: ४० :

श्रृङ्गारिक साहित्य

आजकल हर प्रांत में श्रृंगारिक साहित्य की बाढ़ आ गई है, जिस पर मुझे गहरी आपत्ति है। यह सच है कि कुछ लोग ऐसे हैं जो कहते हैं कि श्रृंगार को छोड़ कर कोई और रस, रस नाम से पुकारने योग्य नहीं; और चूंकि श्रृंगार ही सबसे आगे है, इसलिये जो साहित्य में नियंत्रण की बात करते हैं, उन्हें रसहीन कह कर उनका मज़ाक़ बनाया जाता है। वे यह भूल जाते हैं कि जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने अपना सब कुछ त्याग दिया, वे भी इस को नहीं त्यागते। हममें से हरेक किसी न किसी पवित्र रस से शक्ति प्राप्त करता है। दादाभाई नौरोजी ने देश के लिये सब कुछ त्याग दिया था, लेकिन देश भक्ति की पवित्र

भावना की आग उनके भी हृदय में जल रही थी। उसी से उन्हें सारा आंतरिक सुख प्राप्त होता था। यह कहना कि चैतन्य रसहीन थे, रस की अज्ञता प्रकट करना होगा। गुजरात के संत कवि नरसिंह मेहता ने स्वयं को 'भोगी' पुकारा है, लेकिन उनका भोग था, ईश्वर की अनन्य भक्ति। अगर आप को परेशानी न हो तो मैं यहां तक कहने को तैयार हूं कि शृंगार तो सबसे नीचे दर्जे का रस है, और इसमें अगर अश्लीलता आ जाय तब तो उससे बिलकुल दूर ही रहना चाहिये।

—हरिजन : २ मई, १९३६

: ४१ :

नवयुवकों के लिये

आजकल कहीं-कहीं नवयुवकों की यह आदत सी पड़ गई है कि बड़े बूढ़े जो कुछ कहें वह नहीं मानना चाहिये। मैं यह तो नहीं कहना चाहता कि उसके ऐसा मानने का बिलकुल कोई कारण ही नहीं है; लेकिन देश के युवकों को इस बात से आगाह ज़रूर करना चाहता हूं कि बड़े-बूढ़े स्त्री-पुरुषों द्वारा कही हुई हर एक बात को केवल इस कारण मानने से इन्कार न करें कि उसे बड़े-बूढ़ों ने कहा है। अक्सर बुद्धि की बात बच्चों तक के मुंह से जैसे निकल जाती है, उसी तरह बहुधा—बड़े-बूढ़ों के मुंह से निकल जाती है। स्वर्ण नियम

तो यह है कि हर एक बात को बुद्धि और अनुभव की कसौटी पर कसा जाय, फिर वह चाहे किसी की कही या बताई हुई क्यों न हो।

हमारे अन्दर यह बात जमा दी गई है कि कामवासना की तृप्ति मनुष्य का उतना ही पवित्र कर्त्तव्य है, जितनी वैध रूप में लिये हुये कर्ज़ की अदायगी; और यह भी कहा जाता है कि ऐसा न करने के फलस्वरूप बुद्धि के ह्रास का दण्ड भुगतना पड़ेगा। इस कामवासना को सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से अलग किया जाता है, और कृत्रिम साधनों के हामी कहते हैं कि गर्भाधान तो एक आकस्मिक घटना है, जिसे दोनों पक्षों को सन्तान की इच्छा न हो तो रोकना चाहिये। मैं दावे से कहता हूं कि इस सिद्धान्त का प्रचार कहीं भी अत्यन्त ख़तरनाक है। भारत जैसे देश में तो यह और भी भयंकर है, क्योंकि यहां मध्यम श्रेणी का पुरुष वर्ग अपनी जननेन्द्रिय के दुरुपयोग के कारण शरीर और मन से दुर्बल बन गया है।

काम की प्रेरणा एक सुन्दर और उदात्त वस्तु है। उसमें लज्जित होने की कोई बात नहीं है। परन्तु वह संतानोत्पत्ति के लिये ही बनाई गई है। उसका और कोई उपयोग करना ईश्वर और मानवता दोनों के प्रति पाप है। सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधन पहले भी थे और आगे भी रहेंगे, परन्तु उन्हें काम में लेना पहले पाप समझा जाता था। पाप को पुण्य कहकर उसका गौरव बढ़ाना हमारी पीढ़ी के ही भाग्य में बदा है। मेरे ख्याल से कृत्रिम साधनों के हिमायती भारत के युवकों

की सबसे बड़ी कुसेवा यह कर रहे हैं कि उनके दिमागों में ग़लत विचारधारा भर रहे हैं। भारत के युवा स्त्री-पुरुषों को, जिनके हाथ में देश का भाग्य है, इस झूठे देवता से सावधान रहना चाहिये, ईश्वर ने उन्हें जो खज़ाना दिया है उसकी रक्षा करनी चाहिये और इच्छा हो तो उसे उसी काम में लगाना चाहिये जिसके लिये वह बनाया गया है।

—*हरिजन, २८-३-'३६*

: ४२ :

काम-विज्ञान की शिक्षा

शेष भारत की भांति गुजरात में भी काम के विषय में अस्वाभाविक कुतूहल का दोष दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। इतना ही नहीं, जो इस चक्कर में फंस जाते हैं, वे समझते हैं कि इसमें कोई तारीफ़ की बात है। जब कोई ग़ुलाम अपनी जंजीरों पर गर्व करने लगता है और मूल्यवान आभूषणों की भांति उनसे चिपटा रहता है, तब उसके मालिक की विजय सम्पूर्ण हो जाती है। परन्तु मुझे पक्का विश्वास है कि काम-देव की यह विजय, चमत्कारिक भले ही हो, चंदरोज़ा और तुच्छ ही सिद्ध होगी। और अन्त में उस बिच्छू की तरह, जिसका विष समाप्त हो चुका है, निर्जीव हो जायगी। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इस बीच में हम हाथ बांधे बैठे रहें। उसकी पराजय का विश्वास

होने से हमें सुरक्षितता की झूठी भावना में सो नहीं जाना चाहिये। कामवासना को जीतना स्त्री या पुरुष के जीवन का परम कर्त्तव्य है। वासना पर प्रभुत्व पाये बिना मनुष्य अपने पर प्रभुत्व पाने की आशा नहीं रख सकता। और अपने पर प्रभुत्व पाये बिना स्वराज्य या रामराज्य नहीं हो सकता। स्व-राज्य के बिना स्वराज्य वैसे ही धोखा देने वाला और निराशाजनक साबित होगा, जैसे कोई रंग किया हुआ खिलौने का आम। वह बाहर से देखने में मोहक होता है, मगर भीतर खोखला और कोरा होता है। कोई भी कार्यकर्ता, जिसने काम-वासना पर विजय प्राप्त नहीं कर ली है, हरिजनों, साम्प्रदायिक एकता, खादी, गोरक्षा या ग्राम-पुर्ननिर्माण के कार्य की सच्ची सेवा करने की आशा नहीं रख सकता। इस प्रकार के बड़े-बड़े ध्येयों की सेवा केवल बौद्धिक तैयारी से नहीं हो सकती, उनमें आध्यात्मिक प्रयत्न या आत्मबल की ज़रूरत होती है। आत्मबल ईश्वर की कृपा से आता है और ईश्वर की कृपा उस आदमी पर कभी नहीं होती जो कामवासना का दास है।

काम-विज्ञान की शिक्षा का स्थान

तो फिर, काम-विज्ञान की शिक्षा का हमारी शिक्षा-प्रणाली में क्या स्थान है, या उसका कोई स्थान है भी या नहीं? काम-विज्ञान दो प्रकार का होता है। एक वह जो कामविकार को क़ाबू में रखने या जीतने के काम आता है और दूसरा वह जो उसे उत्तेजन और पोषण देने के काम आता

है। पहले प्रकार के विज्ञान की शिक्षा बाल-शिक्षा का उतना ही आवश्यक अंग है, जितनी दूसरे प्रकार की हानिकारक और खतरनाक है और इसलिये उससे बचना ही उचित है।

जिस काम-शिक्षा के पक्ष में मैं हूं उसका लक्ष्य यही होना चाहिये कि इस विकार पर विजय प्राप्त की जाय और उसका सदुपयोग हो। ऐसी शिक्षा का अपने-आप यह उपयोग होना चाहिये कि बच्चों के दिलों में इन्सान और हैवान के बीच का फ़र्क़ अच्छी तरह जमा दिया जाय, उन्हें यह अच्छी तरह समझा दिया जाय कि हृदय और मस्तिष्क दोनों ही शक्तियों से विभूषित होना मनुष्य का विशेष अधिकार है। वह जितना विचारशील प्राणी है उतना ही भावनाशील भी है—जैसा कि मनुष्य शब्द के धात्वर्थ से प्रगट होता है—और इसलिये ज्ञानहीन प्राकृतिक इच्छाओं पर बुद्धि का प्रभुत्व छोड़ देना मानव सम्पत्ति को छोड़ देना है। मनुष्य में बुद्धि भावना को जाग्रत करती और रास्ता दिखाती है। पशु में आत्मा सुषुप्त रहती है। हृदय को जाग्रत करना सोई हुई आत्मा को जगाना है, बुद्धि को जाग्रत करना है और बुराई-भलाई में विवेक पैदा करना है।

उच्चतम प्रयत्न के योग्य कार्य

आज तो हमारे सारे वातावरण का—हमारे पढ़ने, हमारे सोचने और हमारे सामाजिक व्यवहार का—आम हेतु कामेच्छा की पूर्ति करना होता है। इस जाल को तोड़ कर निकलना आसान काम

नहीं है। परन्तु यह हमारे उच्चतम प्रयत्न के योग्य कार्य है। यदि व्यावहारिक अनुभव वाले मुट्ठी भर शिक्षक भी ऐसे हों, जो आत्म-संयम के आदर्श को मनुष्य का सर्वोच्च्य कर्त्तव्य मानते हों और अपने कार्य में सच्चे और अमिट विश्वास से अनुप्राणित हों, तो उनके परिश्रम से गुजरात के बालकों का मार्ग प्रकाशमान हो जायगा। वे भोले-भाले लोगों को आत्म-पतन के कीचड़ में फंसने से बचा लेंगे; और जो पहले से ही फंस गये हैं, उनका उद्धार कर देंगे।

--हरिजन : २१-११-'३६

: ४३ :

विद्यार्थियों के लिये लज्जाजनक

पंजाब के एक कालेज की लड़की का एक अत्यन्त हृदयस्पर्शी पत्र आया हुआ है, जिसका एक भाग मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूं :

"लड़कियों और प्रौढ़ स्त्रियों के सामने न चाहने पर भी ऐसे अवसर आते हैं, जब उन्हें अकेली निकलने का साहस करना पड़ता है, चाहे वे एक ही शहर में एक जगह से दूसरी जगह जायं या एक शहर से दूसरे शहर को जायं। और जब वे इस तरह अकेली मिल जाती हैं, तो दुष्ट मनोवृत्ति वाले लोग उन्हें सताते हैं। वे पास से गुजरते हुये अनुचित और अश्लील भाषा तक काम में लेते

हैं। और अगर उन पर डर का अंकुश न हो तो वे और भी आगे बढ़ने में नहीं हिचकते।

"उदाहरणार्थ मैं आप को कल (२६ अक्तूबर की) रात का ख़ुद अपना अनुभव बताती हूं। मैं शाम को साढ़े सात बजे के क़रीब एक ख़ास काम से अपनी एक सहेली के साथ जा रही थी। उस समय कोई पुरुष साथी मिलना असम्भव था और काम इतना ज़रूरी था कि टाला नहीं जा सकता था। रास्ते में एक सिक्ख युवक अपनी साइकिल पर जा रहा था। वह कुछ बड़बड़ाता रहा और इतना पास आ गया कि हम उसकी बात सुन सकें। हम जानती थीं कि उसने हमें निशाना बनाया है। हमारे हृदय को ठेस पहुंची और बेचैनी हुई। सड़क पर भीड़ नहीं थी। हम कुछ ही क़दम गईं होंगी कि साइकिल वाला लौट आया। वह काफ़ी दूर था तभी हमने उसे तुरन्त पहचान लिया। वह घूम कर हमारी तरफ़ आया। राम जाने उसका इरादा उतर पड़ने का था या वह केवल हमारे पास से गुज़रना चाहता था। हमें अपने शरीर बल पर विश्वास नहीं था। मैं एक साधारण लड़की से भी दुर्बल हूं। परन्तु मेरे हाथ में एक बड़ी पुस्तक थी। किसी तरह अचानक मुझमें साहस का संचार हुआ। मैंने साइकिल पर भारी पुस्तक फेंकी और गरज कर बोली, 'फिर से करेगा शरारत?' वह मुश्किल से अपना संतुलन रख सका, उसने साइकिल तेज़ की और भाग खड़ा हुआ। अब अगर मैं किताब साइकिल पर न दे मारती तो शायद हमें वह अख़ीर तक अपनी गन्दी

ज़बान से तंग करता रहता। यह एक साधारण, शायद तुच्छ, घटना थी। परन्तु काश आप लाहौर आकर हम अभागी लड़कियों की मुसीबतों की कहानी सुनें। आप अवश्य इस समस्या का कोई उचित हल खोज सकते हैं। सबसे पहले तो मुझे यह बताइये कि उपरोक्त परिस्थिति में लड़कियां अहिंसा का सिद्धान्त लागू करके कैसे अपनी रक्षा कर सकती हैं? दूसरे, स्त्री-जाति का अपमान करने की युवकों की घृणित आदत का इलाज क्या है? आप यह तो नहीं कहेंगे कि जब तक बचपन से स्त्री-जाति के साथ सभ्यता का व्यवहार करने की शिक्षा पाकर नई पीढ़ी तैयार न हो जाय, तब तक हम ठहरें और इस अपमान का कड़ुवा घूंट चुपचाप पीती रहें।"

एक और पंजाबी लड़की, जिसे मैंने यह पत्र पढ़ने को दिया, अपने खुद के कालेज के दिनों के अनुभव से इस वर्णन का समर्थन करती है और मुझे बताती है कि जो कुछ मेरी पत्रलेखिका ने बयान किया है, वह अधिकांश लड़कियों का समान अनुभव है।

एक अनुभवी महिला के पत्र में लखनऊ की उसकी मित्र लड़कियों के अनुभवों का वर्णन है। उन्हें सिनेमा-घरों में उनके पीछे की लाइन में बैठे हुए लड़के छेड़ते हैं और तरह-तरह की भाषा काम में लेते हैं, जिसे मैं तो अश्लील ही कह सकता हूं। कहा जाता है कि वे भद्दे मज़ाक तक कर बैठते हैं, जिनका वर्णन मेरी पत्र लेखिका ने तो किया है, परन्तु मुझे यहां नहीं करना चाहिये।

बदतमीज़ी का उपाय

यदि तात्कालिक और व्यक्तिगत राहत की ही ज़रूरत थी, तो बेशक जो उपाय अपने को शरीर से दुर्बल बताने वाली उस लड़की ने काम में लिया, अर्थात् साइकिल वाले पर पुस्तक दे मारी, वह बिलकुल ठीक था। यह बहुत पुराना उपाय है। और मैं इन स्तंभों में कह चुका हूं कि जब कोई आदमी हिंसक बनना चाहता है, तो शारीरिक दुर्बलता उस हिंसा के कारगर इस्तेमाल में बाधक नहीं बनती, भले ही विरोधी शरीर से कितना ही बलवान हो। और हम जानते हैं कि वर्तमान युग में शरीरबल काम में लेने के इतने तरीक़े ईजाद हो चुके हैं कि काफ़ी बुद्धि वाली छोटी-सी लड़की भी मृत्यु और संहार तक का विधान कर सकती है। आजकल ऐसी स्थिति में, जैसी मेरी पत्र-लेखिका ने बयान की है, लड़कियों को अपनी रक्षा करने की तालीम देने का फ़ैशन बढ़ रहा है। परन्तु वह इतनी समझदार है कि वह जानती है कि यद्यपि वह अपने हाथ की पुस्तक को आत्मरक्षा का हथियार बना कर फ़िलहाल उसका कारगर इस्तेमाल करके बच सकी, परन्तु इस बढ़ती हुई बुराई का यह सच्चा और स्थायी इलाज नहीं है। असभ्य और अश्लील शब्दों के मामले में घबराने की तो ज़रूरत नहीं है, परन्तु उदासीनता भी नहीं होनी चाहिये। ऐसी सब घटनायें अख़बारों में प्रकाशित होनी चाहिये। अपराधियों के नामों का पता लग जाय तो उन्हें छपवा देना चाहिये। इस बुराई का भंडाफोड़ करने में कोई झूठी लज्जा या संकोच नहीं होना

चाहिये। सार्वजनिक दुराचरण का दण्ड देने के लिये लोकमत से बढ़कर कोई चीज़ नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि, जैसा पत्रलेखिका कहती है, ऐसे मामलों को लोग बड़ी उदासीनता से देखते हैं। परन्तु दोष अकेली जनता का ही नहीं है। असभ्यता के उदाहरण उनके सामने आने चाहिये। जैसे चोरी का मुक़ाबला उस वक्त तक नहीं किया जा सकता, जब तक चोरी के मामले प्रकाशित करके उनकी तहक़ीकात न की जाय, वैसे ही असभ्य व्यवहार की घटनाओं का इलाज भी तब तक असंभव होगा, जब तक उन्हें दबाया जाता रहेगा। अपराध और पाप को घात लगाने के लिये आम तौर पर अंधेरे की ज़रूरत होती है। जब उन पर प्रकाश पड़ता है, तब वे ग़ायब हो जाते हैं।

अपने को आकर्षक बनाना

लेकिन मेरा ख़्याल है कि आधुनिक लड़कियों को भी अनेकों की दृष्टि में आकर्षक बनना प्रिय है। उन्हें साहस से प्रेम होता है। मेरी पत्रलेखिका तो असाधारण मालूम होती है। आधुनिक लड़कियां हवा, मेह और धूप से बचने के लिये कपड़े नहीं पहनतीं, परन्तु लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिये पहनती हैं। वे अपने को रंग कर क़ुदरत को मात करना और असाधारण सुन्दर दिखना चाहती हैं। अहिंसा का मार्ग ऐसी लड़कियों के लिये नहीं है। मैंने इन स्तंभों में कई बार कहा है कि हमारे भीतर अहिंसक वृत्ति का विकास होने के लिये अमुक निश्चित नियम होते हैं। वह परिश्रमपूर्ण

प्रयत्न है। सोचने और रहने के तरीक़े में क्रांति करनी पड़ती है। यदि मेरी पत्रलेखिका और उसी की भांति सोचने वाली लड़कियां बताये हुए ढंग पर अपने जीवन में क्रांति कर लें, तो उन्हें जल्दी ही पता लग जायगा कि जो युवक उनके कुछ भी सम्पर्क में आते हैं, वे उनका आदर करना और उनकी उपस्थिति में उत्तम व्यवहार करना सीख जायेंगे। परन्तु यदि संयोगवश उन्हें मालूम हो, जैसा कभी हो सकता है, कि उनकी इज़्ज़त पर हमला होने का ख़तरा है, तो उन्हें अपने भीतर इतना साहस पैदा कर लेना चाहिये कि मर जायं, मगर इन्सान की हैवानियत के सामने न झुकें। यह कहा जाता है कि कभी-कभी लड़की के मुंह में कपड़ा ठूंस कर या हाथ-पैर बांध कर उसे इतना बेबस बना दिया जाता है कि वह उतनी आसानी से नहीं मर सकती, जितना मेरा ख़्याल है। मैं दावे से कह सकता हूं कि जिस लड़की का मुक़ाबला करने का दृढ़ संकल्प होगा, वह ऐसे सारे बंधनों को तोड़ सकती है। दृढ़ इच्छाशक्ति मरने का बल दे देती है।

परन्तु यह शौर्य और दिलेरी उन्हीं के लिये संभव है, जिन्होंने इसका अभ्यास कर लिया हो। जिनका अहिंसा में सजीव विश्वास न हो, वे साधारण आत्मरक्षा की कला सीख लें और शौर्यहीन युवकों के अभद्र व्यवहार से अपनी रक्षा कर लें।

नौजवानों को प्रार्थना

परन्तु बड़ा सवाल यह है कि नौजवानों को साधारण सभ्यता से भी इतना विहीन क्यों होना

चाहिये कि भद्र बालिकाओं को सदा उनकी छेड़छाड़ का डर बना रहे? मुझे यह जान कर दुःख होता है कि अधिकांश नवयुवकों में शौर्य का बिलकुल माद्दा नहीं रहा। परन्तु एक वर्ग के नाते सामूहिक रूप में उन्हें अपनी अच्छी ख्याति का बहुत ध्यान रखना चाहिये और अपने साथियों में होने वाली हर एक अनुचित घटना का उन्हें उपाय करना चाहिये। उन्हें प्रत्येक स्त्री की इज़्ज़त को उतनी ही प्यारी समझना सीखना चाहिये, जितनी कि उनकी अपनी मां-बहनों की इज़्ज़त है। यदि वे शिष्टता और सभ्यता नहीं सीखेंगे, तो उन्हें मिलने वाली सारी शिक्षा व्यर्थ होगी।

और क्या प्रोफ़ेसरों और शिक्षकों का भी यह काम नहीं है कि वे अपने विद्यार्थियों में शराफ़त लाने की उतनी ही चिन्ता रखें, जितनी वे पाठ्यक्रम के विषयों में उन्हें तैयार करने की रखते हैं?

—हरिजन, ३१-१२-'३८

: ४४ :

आधुनिक लड़की

मुझे ११ लड़कियों की तरफ़ से लिखा हुआ एक पत्र मिला है। उनके नाम और पते मेरे पास भेजे गये हैं। मैं उस पत्र में सिर्फ़ इतना परिवर्तन करके नीचे दे रहा हूं, जिससे वह अधिक पढ़ने

लायक़ बन जाय, लेकिन उसके अर्थ को किसी तरह नहीं बदल रहा हूं :

"मालूम होता है आधुनिक लड़की ने आपको इतना चिढ़ा दिया है कि आपने उसके बारे में यहां तक कह डाला कि उसे तो अनेकों की दृष्टि में आकर्षक बनना प्रिय है। आपका यह वचन, जिससे आम तौर पर स्त्रियों के बारे में आपका विचार प्रगट होता है, बहुत प्रेरणादायक नहीं है।

"इन दिनों जब स्त्रियां चहारदीवारी से निकल कर पुरुषों की सहायता के लिये आगे आ रही हैं और जीवन का भार वहन करने में समान भाग ले रही हैं, यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि उनके साथ पुरुषों का दुर्व्यवहार होने पर भी दोष स्त्रियों को ही दिया जाता है। इससे इन्कार नहीं किया जाता कि ऐसे दृष्टांत दिये जा सकते हैं, जिनमें दोनों ही पक्षों का एक सा अपराध सिद्ध किया जा सके। कुछ लड़कियां ऐसी हो सकती हैं, जिन्हें अनेकों भ्रमरों की दृष्टि में आकर्षक बनना प्रिय हो। परन्तु ऐसी घटनाओं से यह तो साबित होता ही है कि फूलों की शोध में सड़कों पर मंडराने वाले अनेक भ्रमर भी मौजूद हैं। और यह तो कभी नहीं माना जा सकता और न माना जाना चाहिये कि सभी आधुनिक लड़कियां ऐसी होती हैं और सभी आधुनिक नौजवान भ्रमर होते हैं। आप खुद बहुत सी आधुनिक लड़कियों के सम्पर्क में आये हैं और आपको उनके दृढ़ निश्चय, त्याग और कई उत्तम स्त्रियोचित गुणों का परिचय मिला होगा।

"जहां तक आपकी पत्रलेखिका के बताये हुए

दुर्व्यवहारों के ख़िलाफ़ लोकमत तैयार करने का सवाल है, यह काम लड़कियों के करने का नहीं है। इसका कारण झूठी शर्म नहीं, बल्कि असमर्थता है।

"परन्तु आप जैसे जगद्वंद्य पुरुष का ऐसा कथन यह सिद्ध करता है कि आप भी इस दकियानूसी और अशोभनीय कहावत का समर्थन करते हैं कि 'नारी नरक की खान' है।

"परन्तु उपरोक्त बातों से यह निष्कर्ष न निकालिये कि आजकल की लड़कियों में आपके लिये आदर नहीं है। वे आपकी उतनी ही इज़्ज़त करती हैं, जितनी हर एक नौजवान करता है। लेकिन उन्हें यह बहुत बुरा लगता है कि कोई उनसे घृणा करे या उन पर दया करे। अगर वे सचमुच दोषी हों तो वे अपना तौर-तरीक़ा सुधारने को तैयार हैं। उन्हें दोष देने से पहले उनका कोई दोष हो तो वह पूरी तरह साबित करना चाहिये। इस बारे में वे न तो स्त्रियों के प्रति विशेष सुविधा के नियमों की शरण लेना चाहती हैं और न यह चाहती हैं कि वे चुपचाप खड़ी रहें और न्यायधीश मनमाने तौर पर उनको दोषी ठहरा दे। सचाई सामने आनी ही चाहिये; और आधुनिक लड़की सचाई का सामना करने का काफ़ी साहस रखती है।"

मेरी पत्रलेखिकाओं को शायद यह पता नहीं है कि मैंने ४० वर्ष से भी पहले दक्षिण अफ़्रीका में भारतीय स्त्रियों की सेवा आरम्भ की थी, जब शायद उनमें से किसी का जन्म भी न हुआ होगा। मेरा यह विश्वास है कि मैं स्त्री-जाति के लिये कोई

अपमानजनक बात लिख ही नहीं सकता। स्त्री-जाति के लिये मेरा आदर इतना अधिक है कि वह मुझे उनका बुरा सोचने ही नहीं दे सकता। जैसा कि अंग्रेज़ी में कहा गया है, स्त्री पुरुष का उत्तम अर्धांग है। और मेरा लेख विद्यार्थियों की बेहयाई की क़लई खोलने के लिये लिखा गया था, न कि लड़कियों की दुर्बलता का विज्ञापन करने के लिये। परन्तु रोग का निदान करते समय मेरा यह धर्म था कि सही इलाज बताने के ख़्याल से बीमारी पैदा करने वाले सभी कारणों का उल्लेख करूं।

भारतीय विद्यार्थियों को चेतावनी

'आधुनिक लड़की' शब्द का विशेष अर्थ है। इसलिये अपनी बात का क्षेत्र कुछ लड़कियों तक सीमित रखने का कोई सवाल नहीं था। परन्तु जो लड़कियां अंग्रेज़ी शिक्षा पाती हैं, वे सब आधुनिक लड़कियां नहीं हैं। मैं बहुत-सी ऐसी लड़कियों को जानता हूं, जिन्हें 'आधुनिक लड़की' की वृत्ति ने छुआ तक नहीं है; परन्तु कुछ लड़कियां हैं, जो आधुनिक लड़कियां बन गई हैं। मेरे शब्दों का अर्थ भारतीय विद्यार्थियों को यह चेतावनी देने का था कि वे आधुनिक लड़की की नक़ल कर के उस समस्या को, जो गंभीर ख़तरा बन गई है, पेचीदा न बनावें। क़ारण, जिस समय मुझे उपरोक्त पत्र मिला, उसी समय एक आन्ध्र की विद्यार्थिनी का पत्र भी मिला, जिसमें आन्ध्र के विद्यार्थियों के व्यवहार की सख़्त शिकायत की गई थी। उसमें जो

वर्णन दिया गया है, वह लाहौरवाली लड़की के वर्णन से भी ख़राब है। इस आन्ध्रपुत्री का कहना है कि उसकी सहेलियों के सादे वेश से उनकी रक्षा नहीं होती। परन्तु उनमें इतना साहस नहीं है कि जो लड़के अपनी संस्था के लिये कलंक हैं, उनके जंगलीपन का भंडाफोड़ कर सकें। मैं आन्ध्र विश्वविद्यालय के अधिकारियों से इस शिकायत पर ध्यान देने की सिफ़ारिश करता हूं।

इन ११ लड़कियों से मेरा अनुरोध है कि वे विद्यार्थियों के असभ्य व्यवहार के ख़िलाफ़ एक ज़िहाद शुरू कर दें। ईश्वर उन्हीं की मदद करता है, जो अपनी मदद आप करते हैं। लड़कियों को पुरुषों की गुंडागिरी से अपनी रक्षा करने की कला सीख लेनी चाहिये।

—हरिजन, ४-२-'३९

: ४५ :

विद्यार्थिनियों को

तुम्हारे माता-पिता तुम्हें गुड़िया बनने के लिये स्कूल नहीं भेजते हैं। इसके विपरीत तुमसे दया की देवियां बनने की आशा रखी जाती है। तुम यह सोचने की भूल न करना कि जो एक ख़ास तरह की पोशाक़ पहनती हैं वे ही दया की देवियां (Sisters of mercy) कहला सकती

हैं। ज्यों ही कोई स्त्री अपना विचार कम और जो लोग उससे ग़रीब और अभागे हैं उनका विचार अधिक करने लगती है, त्यों ही वह दया की देवी बन जाती हैं। और मुझे जो थैली भेंट की गई है उसमें यथाशक्ति दान देकर तुमने दया की देवियों का ही काम किया है। क्योंकि यह थैली उन लोगों के लिये भेंट की गई है, जो दुर्भाग्यवश तुमसे अधिक ग़रीब हैं।

थोड़ा-सा रुपया दे देना बहुत आसान है; कोई छोटी-सी चीज़ स्वयं करना अधिक कठिन है। जिन लोगों के लिये तुम रुपया दे रही हो, उनके लिये तुम्हें सचमुच दर्द हो, तो तुम्हें एक क़दम और आगे बढ़कर उन लोगों की बनाई हुई खादी पहननी चाहिये। अगर खादी तुम्हारे सामने लाई जाय और तुम यह कहो कि 'खादी ज़रा मोटी है इसलिये हम पहन नहीं सकतीं', तो मैं जान लूंगा कि तुममें त्यागवृत्ति नहीं है।

यह बहुत बढ़िया बात है कि यहां[1] पर ऊंच-नीच, स्पृश्य-अस्पृश्य का कोई भेद नहीं है; और यदि तुम्हारे हृदय भी इसी दिशा में काम कर रहे हैं और तुम दूसरी लड़कियों से अपने को श्रेष्ठ नहीं समझतीं, तो सचमुच बहुत अच्छी बात है।

भगवान तुम्हारा भला करे!

—*विथ गांधीजी इन सीलोन, पृ० १४५-४६*

---

[1]उदीविल लड़कियों का महाविद्यालय, जाफ़ना।

पूजा को कार्य रूप में बदलना

तुम्हारे समय-विभाग में मैं देखता हूं कि तुम अपनी दिनचर्या पूजा से आरम्भ करती हो। ये सब बातें अच्छी और ऊंचा उठानेवाली हैं; परन्तु यह सब आसानी से एक सुन्दर विधि बनकर ही रह जायगा, यदि इस पूजा को नित्य किसी व्यावहारिक कार्य के रूप में परिणत न किया जाय। इसलिये मैं कहता हूं कि पूजा के कार्य पर दृढ़ता से डटे रहने के लिये तुम चरखा अपनाओ, उस पर आधा घंटा कातो और जिन लाखों लोगों की हालत का मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया है, उनका ख्याल करो और ईश्वर का नाम लेकर कहो, "मैं उनके ख़ातिर कातती हूं।" यदि तुम सच्चे दिल से और इस ज्ञान के साथ कातो कि तुम भक्ति का यह सच्चा काम करके अधिक नम्र और अधिक सम्पन्न बन रही हो, अगर तुम दिखावे के लिये नहीं, परन्तु अपने अंग ढंकने के लिये कपड़ा पहनो, तो तुम्हें खादी पहनने में अवश्य ही कोई संकोच नहीं होगा और तुम अपने और लाखों लोगों के बीच स्नेह-सम्बन्ध स्थापित कर सकोगी।

सन्तोषप्रद फल नहीं

मुझे इस संस्था[1] के लड़कियों को केवल यही नहीं कहना है . . . .

मैंने तुम्हारी पत्रिकाओं में थोड़े क्षम्य गर्व के साथ यह उल्लेख किया हुआ पाया कि स्कूल

[1]रामानाथन लड़कियों का महाविद्यालय, जाफ़ना।

की भूतपूर्व लड़कियां क्या क्या करती रही हैं। मैंने कुछ इस ढंग की सूचनायें देखीं कि अमुक अमुक ने अमुक अमुक के साथ विवाह कर लिया। ऐसी चार-पांच सूचनायें थीं। मैं जानता हूं कि जो लड़की सयानी हो जाय अर्थात् २२ या २५ साल की भी हो जाय और वह शादी कर ले, तो कोई बेजा बात नहीं है। लेकिन इन सूचनाओं में ऐसी एक भी लड़की का नाम मैंने नहीं देखा, जिसने अपने को सिर्फ़ देश और समाज की सेवा के लिये समर्पित कर दिया हो। इसलिये मैं तुमसे वही बात कहना चाहता हूं, जो मैंने बंगलोर में लड़कियों के महाराजा कालेज की विद्यार्थिनियों से कही थी। यानी यह कि यदि तुम सब इन संस्थाओं से बाहर निकलते ही निरी गुड़िया बन आओ और जीवन से ओझल हो जाओ, तो यह उन महान् प्रयत्नों का सन्तोषप्रद फल नहीं है, जो शिक्षा-शास्त्रियों और उदार दानियों द्वारा किये जा रहे हैं।

ज़्यादातर लड़कियां स्कूल-कालेजों से छूटते ही सार्वजनिक जीवन से ग़ायब हो जाती हैं। इस संस्थावाली तुम लोगों का यह काम नहीं है। तुम्हारे सामने कुमारी एमरी और दूसरी स्त्रियों के उदाहरण मौजूद हैं, जो निरीक्षक का काम करती रही हैं और अगर मैं ग़लती नहीं कर रहा हूं तो अविवाहिता हैं।

हरएक लड़की, हरएक हिन्दुस्तानी लड़की, विवाह के लिये पैदा नहीं हुई है। मैं ऐसी बहुत-

सी लड़कियां बता सकता हूं, जो आजकल एक आदमी की सेवा करने के बजाय अपने को देश-सेवा में समर्पित कर रही हैं। वह समय आ गया है जबकि हिन्दू लड़कियां पार्वती और सीता का उदाहरण और संभव हो तो उनसे भी बढ़िया उदाहरण पेश करें।

दहेज की घृणित प्रथा

तुम शैव होने का दावा करती हो। तुम जानती हो पार्वती ने क्या किया था? उसने पति के लिये रुपया ख़र्च नहीं किया, न वह किसी के हाथ बिकना चाहती थी। इसलिये आज वह हिन्दू धर्म के आकाश में सात सतियों में से एक बनकर उसे सुशोभित कर रही है। इसका कारण यह नहीं है कि उसने किसी शिक्षा-संस्था में कोई डिग्री प्राप्त की थी, बल्कि इसका कारण उसकी अपूर्व तपस्या है।

मुझे मालूम हुआ है कि यहां दहेज की घृणित प्रथा है और उसके कारण युवतियों को योग्य वर मिलना बहुत ही कठिन हो जाता है। सयानी लड़कियों से—तुममें से कुछ सयानी हो गई हैं—आशा रखी जाती है कि वे इन सब प्रलोभनों का प्रतिकार करेंगी। यदि तुम इन कुरीतियों का विरोध करना चाहती हो, तो तुममें से कुछ को जीवन भर या कम-से-कम कुछ वर्ष तक अविवाहित रहकर कार्यारम्भ करना होगा। फिर जब शादी करने का समय आये और तुम महसूस करो कि तुम्हें कोई जीवन-साथी चाहिये, तब

तुम्हें ऐसे आदमी की लालसा नहीं होगी, जिसके पास रुपया, ख्याति या शरीर-सौंदर्य है, बल्कि तुम्हें ऐसे आदमी की तलाश होगी—जैसे पार्वती को थी—जिसमें अच्छे चरित्र के लिये आवश्यक सारे अद्वितीय गुण भरे हों। तुम्हें मालूम है नारदजी ने पार्वती के सामने शिव का कैसा वर्णन किया था—वह दरिद्र हैं, शरीर पर भस्म लगाये रहते हैं, रूपवान भी नहीं और ब्रह्मचारी हैं। और पार्वती ने कहा, 'हां वही मेरे पति होंगे।' पार्वती की भांति जब तक तुममें से कुछ तपस्या—हज़ारों वर्ष तक नहीं—करके सन्तोष नहीं मानेंगी, तब तक तुम्हें शिवजी के अनेक-संस्करण नहीं मिलेंगे। हम पामर प्राणी उतनी तपस्या तो नहीं कर सकते, परन्तु कम-से-कम अपने जीवन-काल में तो तुम तपस्या कर ही सकती हो।

गुड़ियों का देश

यदि तुम्हें ये शर्तें स्वीकार होंगी तो तुम गुड़ियों के देश में विलीन हो जाने से इनकार कर दोगी और पार्वती, दमयंती, सीता और सावित्री की तरह सतियां होने की आकांक्षा रखोगी। तभी—उससे पहले नहीं—तुम, मेरी राय में, इस प्रकार की संस्था में पढ़ने की हक़दार बनोगी।

भगवान तुममें इस महत्त्वाकांक्षा की आग पैदा करे; और यदि वह प्रेरणा तुममें जागृत हो जाय, तो वह तुम्हें इस महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति में सहायक हो।

—*विथ गांधीजी इन सीलोन, पृ० १४७-४९*

: ४६ :

नौजवानों के लिये लज्जाजनक

कोई भी नौजवान, जो दहेज को विवाह की शर्त बनाता है, अपनी शिक्षा और अपने देश को कलंकित करता है और स्त्री-जाति का अपमान करता है। देश में कई युवक-आन्दोलन चल रहे हैं। काश ये आन्दोलन इस प्रकार के प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न करें। ऐसे मंडल भीतर से ठोस सुधार करने वाली संस्थायें बनने के बजाय, जैसा कि उन्हें होना चाहिये, अक्सर आत्मप्रशंसा के साधन बन जाते हैं। कभी-कभी ये संस्थायें सार्वजनिक आन्दोलनों को सहायता देने का अच्छा काम ज़रूर करती हैं। परन्तु यह याद रखना चाहिये कि देश के युवकों को सार्वजनिक प्रशंसा के रूप में पुरस्कार मिल जाता है। ऐसे काम के पीछे भीतरी सुधार का प्रयत्न न हो, तो नौजवानों में नैतिक कमज़ोरी आ जाने की संभावना रहती है। क्योंकि उनमें अनुचित आत्मसन्तोष की भावना पैदा हो जाती है। दहेज की पतनकारी प्रथा की निंदा करने के लिये सबल लोकमत पैदा किया जाना चाहिये और जो युवक इस तरह के पाप के पैसे से अपने हाथ गंदे करते हैं, उनका सामाजिक बहिष्कार होना चाहिये। लड़कियों के माता-पिता को[1] अंग्रेज़ी की डिग्रियों की चका-

---

[1]माता-पिता को अपनी पुत्रियों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिये कि जो नौजवान शादी की क़ीमत मांगे उससे विवाह

चौंध में फंसना बन्द कर देना चाहिये और अपनी छोटी-छोटी जातियों और प्रान्तों के दायरे से बाहर निकलकर अपनी लड़कियों के लिये सच्चे और बहादुर नौजवान तलाश करने में संकोच नहीं करना चाहिये ।

—यंग इंडिया, २१-६-'२८

: ४७ :

विवाह रुपये-पैसे का सौदा

इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रथा (दहेज) अमानुषिक और कठोर है । ...... यह प्रथा मिटनी ही चाहिये । विवाह माता-पिताओं द्वारा किया जानेवाला रुपये-पैसे का सौदा नहीं रहना चाहिये । इस प्रथा का जाति-प्रथा से गहरा सम्बन्ध है । जब तक किसी विशेष जाति के दो-चार सौ युवक-युवतियों तक ही वर या वधू का चुनाव सीमित रहेगा, तब तक यह प्रथा बनी ही रहेगी, भले उसके विरोध में कुछ भी कहा जाय । अगर इस बुराई को जड़ से मिटाना है, तो लड़के-लड़-

---

करने से वे इनकार कर दें और ऐसी अपमान भरी शर्त स्वीकार करने के बजाय कुंवारी रहना पसन्द करें। विवाह का सम्मानपूर्ण आधार परस्पर प्रेम और दोनों पक्षों की स्वीकृति ही हो सकती है ।"

—यंग इंडिया, २७-१२-'२८

कियों या उनके माता-पिताओं को जाति के बन्धन तोड़ने होंगे।[1] फिर विवाह की उम्र भी बढ़ानी होगी। और यदि ज़रूरत हो, अर्थात् योग्य वर न मिले, तो लड़कियों को कुंवारी रहने का भी साहस करना होगा। इन सारी बातों का मतलब यह हुआ कि शिक्षा इस ढंग की दी जाय, इससे राष्ट्र के नौजवानों की मनोवृत्ति में क्रांति पैदा हो जाय। दुर्भाग्य से आज की शिक्षा-प्रणाली का हमारी परिस्थितियों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है और इसलिये राष्ट्र के बहुत ही थोड़े लड़कों

---

[1] "जाति और प्रान्त की दोहरी दीवार टूटनी ही चाहिये। यदि भारत एक और अविभाज्य है, तो उसके ऐसे कृत्रिम विभाजन नहीं होने चाहिये जिनसे आपस में रोटी-बेटी का व्यवहार न करने वाले असंख्य छोटे-छोटे गुट पैदा हो जायं। इस निर्दय प्रथा में कोई धर्म नहीं है। यह दलील देने से काम नहीं चलेगा कि व्यक्ति इसका प्रारम्भ नहीं कर सकते और जब तक सारा समाज परिवर्तन के लिये तैयार न हो जाय, तब तक उन्हें प्रतीक्षा करनी चाहिये। कोई सुधार तब तक कभी नहीं हुआ है, जब तक निर्भय व्यक्तियों ने समाज में प्रचलित अमानुषिक प्रथाओं या रिवाजों को तोड़ा न हो। और आखिर इस शिक्षक को क्या कष्ट हो सकता है, यदि वह और उसकी लड़कियां विवाह को कोई बाज़ारू सौदा न समझकर एक पवित्र धार्मिक संस्कार समझ लें, जैसा कि वह निःसन्देह है। इसलिये मैं अपने पत्रलेखक को सलाह दूंगा कि वे ऋण लेने या भिक्षा मांगने का विचार साहसपूर्वक छोड़ दें, अपने जीवन-बीमे पर मिलने वाले ४०० रुपये बचा लें और अपनी पुत्री से सलाह करके कोई योग्य वर चुन लें, भले वह किसी भी जाति या प्रान्त का क्यों न हो।"

—हरिजन, २५-७-'३६

और लड़कियों को जो शिक्षा मिलती है, उसका उन परिस्थितियों पर लगभग कुछ भी असर नहीं होता। इसलिये इस बुराई को कम करने के लिये जो कुछ किया जा सकता हो ज़रूर करना चाहिये। परन्तु मेरे लिये यह स्पष्ट है कि यह बुराई और दूसरी अनेक बुराइयां तभी दूर होंगी, जब शिक्षा देश की तेजी से बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप हो। ऐसा क्यों है कि इतने लड़के और लड़कियां कालेजों की शिक्षा ग्रहण करके भी एक ऐसी प्रत्यक्ष कुरीति का विरोध करने में असमर्थ या अनिच्छुक पाये जाते हैं, जिसका असर उनके भविष्य पर विवाह के जितना ही गहरा होता है? शिक्षित लड़कियां वर न मिलने के कारण आत्महत्या क्यों करें? उनकी शिक्षा किस काम की, यदि उससे उनमें एक ऐसे रिवाज़ का विरोध करने की शक्ति नहीं आती, जिसका किसी तरह समर्थन नहीं किया जा सकता और जो मनुष्य की नैतिक भावनाओं के विरुद्ध है? उत्तर स्पष्ट है। शिक्षाप्रणाली की जड़ में ही ऐसी कोई ख़राबी है, जिससे लड़कियों और लड़कों में सामाजिक या दूसरी बुराइयों से लड़ने की शक्ति पैदा नहीं होती। महत्त्व उसी शिक्षा का होता है, जो विद्यार्थी की शक्तियों का इस तरह विकास करे कि वह जीवन के प्रत्येक विभाग की समस्याओं को ठीक तरह से हल करने में समर्थ हो।

—हरिजन, २३-५-'३६

: ४८ :

हमारा दुर्भाग्य

यह हमारा दुर्भाग्य है कि किसी लड़की से विवाह करने की क़ीमत ऐंठने की नीचता को हमारे समाज में निश्चित अयोग्यता नहीं माना जाता। कालेजों की अंग्रेज़ी शिक्षा को बिलकुल कृत्रिम मूल्य दे दिया गया है। इसकी आड़ में अनेक पाप होते हैं। जिन वर्गों के शिक्षित युवक लड़कियों से विवाह करने के प्रस्ताव स्वीकार करने के लिये क़ीमतें ऐंठते हैं, उन वर्गों में यदि 'योग्यता' की व्याख्या आज की प्रचलित व्याख्या से ज़्यादा समझदारी से की जाती, तो लड़कियों के लिये योग्य वरों का चुनाव करने की कठिनाई अगर सर्वथा दूर न होती तो भी बहुत हद तक कम ज़रूर हो जाती। इसलिये जहां मैं सिफ़ारिश करता हूं कि माता-पिता मेरी पत्रलेखिका के प्रस्ताव पर ध्यान दें, वहां मैं जाति-पांति की अत्यन्त हानिकारक बाधाओं को तोड़ डालने की आवश्यकता पर भी ज़ोर दूंगा। इन बाधाओं को तोड़ डालने से चुनाव का दायरा विस्तृत हो जायगा और इस प्रकार रुपया ऐंठने की बुराई बहुत कुछ अपने-आप रुक जायगी।

—हरिजन, ५-६-'३६

: ४६ :

सिन्धी विद्यार्थियों से

अच्छा, नौजवानों, एक अंग्रेज़ी कहावत की बात कहता हूं। कहावत है : "नक़ल ख़ुशामद का सबसे ईमानदारी का तरीक़ा है।" आपने अपने भाषण में मेरी बड़ाई का पुल बांध दिया है, लेकिन मैं देखता हूं कि व्यवहार में तुम उन सारी चीज़ों का उल्लंघन कर रहे हो जिनका मैं समर्थन करता हूं। यह तो ऐसा लगता है, मानों तुम मुझसे कहना चाहते हो कि : 'हम जानते हैं कि आप क्या चाहते हैं, लेकिन साथ ही साथ हम करेंगे उसके ठीक विपरीत।' जहां तक मेरा ख़्याल है, तुम लोग जान-बूझ कर मेरा अपमान तो नहीं ही करना चाहते होगे। तब क्या मुझे 'महात्मा' बना कर और हिमालय की मुर्दार ऊंचाई तक चढ़ा कर और मेरी बातें मानने की ज़िम्मेदारी अपने कन्धे से उतार फेंक कर तुम लोग मेरी टांग खींचना चाहते हो? बात जो भी हो, अब चूंकि तुम लोगों ने मुझे यहां बुला लिया है, तुम लोग अपनी सारी ग़लतियों का ब्यौरा मेरे सामने पेश करोगे ही।

जीवित नर कंकालों

"अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के नाते तुम्हें जानना चाहिये कि तुम जो फ़ीस देते हो वह उस बड़ी रक़म का छोटा सा हिस्सा भी नहीं है, जो सरकारी कोष से तुम्हारी शिक्षा पर खर्च की जाती है।

मेरे बढ़िया नौजवानो ! क्या तुम्हें कभी यह भी सूझा है कि बाक़ी का रुपया कहां से आता है? वह ग़रीबों की जेब से आता है, उड़ीसा के उन जीवित नर-कंकालों के पास से आता है, जिनकी आंखों का तेज़ मर गया है, जिनके चेहरों पर निराशा छाई रहती है, जिनके पेट साल में ३६५ दिन भूख से जलते रहते हैं और जो धनी गुजरातियों और मारवाड़ियों के अपमानपूर्ण दान द्वारा उनकी ओर फेंके गये मुट्ठी भर सड़े चावलों और चुटकी भर गन्दे नमक पर अपना गुज़ारा चलाते हैं। तुमने अपने इन अभागे भाइयों के लिये क्या किया? अपनी बहनों के पवित्र हाथों से तैयार की हुई हाथकते सूत की खादी पहनने के बजाय, जिससे उनकी कमाई में और पैसे जुड़ जाते हैं, तुम विदेशी माल ख़रीदते हो, और इस तरह हर साल देश से साठ करोड़ रुपया बाहर भेज देने और भारत के ग़रीबों के मुंह का कौर छीन लेने में सहायक होते हो।[1] नतीजा यह होता है कि देश का कचूमर

---

[1] "मेरे पास जब विलायती टोपी और कपड़ा पहन कर युवक आते हैं तो मेरा दिल बैठ जाता है। मेरे मन में आता है कि ये नौजवान यह क्यों नहीं समझते कि जबकि खादी की टोपी के पांच आने हिन्दुस्तान के ग़रीबों के घर में जाते हैं विलायती टोपी पर जो यह डेढ़ रुपया फेंकते हैं, वह दरिया में जाता है? जो आदमी देश के ग़रीबों को भूल कर दुनिया के ग़रीबों को ढूंढने जाता है वह पागल है। ख़ुदा उसे तकब्बरी करने वाला कहेंगे। ख़ुदा कहेंगे कि 'अपने देश के नंगों भूखों को पहले देख, पीछे दुनिया का विचार कर।

निकल रहा है। हमारा व्यापार हमारे देश को सम्पन्न बनाने के बदले हमारे शोषण का साधन बन गया है और हमारे व्यापारी वर्ग की स्थिति लंकाशायर और मैनचेस्टर के कमीशन एजेंटों की हो गई है। उन्हें उस व्यापार के लाभ में से, जिससे हमारे बड़े-बड़े शहरों की सारी दिखावटी शान खड़ी हुई है, मुश्किल से पांच फ़ी सदी हिस्सा मिलता है।

भारत के ग़रीबों का जीवनरक्त

किसी ऐतिहासिक अवसर पर लॉर्ड सैलिसबरी ने कहा था कि चूंकि भारत का ख़ून निकालना है, इसलिये नश्तर उन भागों में लगाना चाहिये जहां ख़ून जमा हुआ है। और यदि लॉर्ड सैलिसबरी के ज़माने में आमदनी ख़ून निकालने की क्रिया से करनी पड़ती थी, तो आजकल यह स्थिति कितनी अधिक बढ़ गई होगी, जब कि भारत इन तमाम वर्षों के शोषण के परिणामस्वरूप और भी ग़रीब हो गया है? तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिये कि इसी आमदनी में से, जो भारत के ग़रीबों का जीवन-

---

दुनिया के लोगों का विचार करने तो मैं बैठा ही हूं, तू अपने पड़ोसी का विचार कर।' जो आदमी ग़रीबों के लिये कुछ नहीं करता वह हिन्दू होकर चाहे गायत्री जपता हो, मुसलमान होकर पांच नमाज़ पढ़ता हो, सिजदे करके चाहे वह सिर भले ही घिस डाले तो भी मगर वह गायत्री, वह नमाज़, वह सिजदा, सभी बेकार हैं।"

—यंग इंडिया : १०-३-'२७

रक्त चूसने से होती है, तुम्हारी शिक्षा का ख़र्च चलाया जाता है। और क्या तुमने यह भी समझ लिया है कि तुम्हें जो शिक्षा मिलती है वह तुम्हारे देशवासियों को पतित बनाकर मिलती है, क्यों-कि उस पर ख़र्च किया जाने वाला रुपया शराब की बदनाम आमदनी से आता है? इसलिये तुम्हें भगवान के न्यायासन के सामने इस भयंकर प्रश्न का उत्तर देना पड़ेगा कि तुमने अपने भाइयों के साथ क्या किया? मैं तुमसे पूछता हूं कि उस समय तुम इस प्रश्न का क्या जवाब दोगे?

'देती-लेती' की निन्दनीय प्रथा

और बतायें, 'देती-लेती' की निन्दनीय प्रथा के बारे में तुम्हारा क्या कहना है? अपनी पत्नियों को अपने घरों और दिलों की रानियां बनाने के बजाय तुमने उन्हें ख़रीद और बिक्री का सामान बना रखा है! क्या अंग्रेज़ी साहित्य को पढ़ कर तुमने यही सबक़ सीखा है? स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी बताया गया है। परन्तु तुमने उसका दर्जा घटा कर उसे दासी बना दिया है। नतीजा यह है कि तुम्हारा देश इस समय लकवे की हालत में पड़ा हुआ है। अन्त में गांधी जी ने कहा: "स्वराज्य कायरों के लिये नहीं परन्तु उनके लिये है, जो हंसते हुये फांसी के तख़्ते पर चढ़ जायं और अपनी आंखों पर पट्टी भी न बांधने दें। प्रतिज्ञा करो कि तुम 'देती-लेती' का कलंक मिटा दोगे, और अपनी बहनों और पत्नियों को फिर से उनकी पूरी प्रतिष्ठा और स्वातंत्र्य प्राप्त कराने में मर

मिटोगे। तब मैं समझूंगा कि तुम अपने देश की स्वतंत्रता के लिये तैयार हो।

नौजवान लड़कियों से

जहां तक नौजवान लड़कियों का सम्बन्ध है, मैं तुमसे इतना ही कहूंगा कि अगर मेरी देख-रेख में कोई लड़की हो तो उसे मैं जीवन भर कुंवारी रखना मंजूर करूंगा, परन्तु किसी ऐसे आदमी को नहीं दूंगा, जो उसे पत्नी बनाने के बदले में एक पैसे की भी आशा रखता हो।

—*यंग इंडिया : १४–२–'२६*

: ५० :

मदरासी विद्यार्थियों से

एक विद्वान तामिल मित्र ने मुझे लिखा है कि मैं विद्यार्थी लोगों को बाल-विधवाओं के बारे में कहूं। उन्होंने कहा है कि इस प्रदेश की बाल-विधवाओं के कष्ट भारत के अन्य भागों की बाल-विधवाओं के कष्टों से कहीं अधिक है। मैं इस बयान की सचाई की जांच नहीं कर पाया हूं। मेरी अपेक्षा इसकी जानकारी तुम्हें अधिक होगी। परन्तु मेरे आसपास के नौजवानों से मैं यह अवश्य चाहूंगा कि वे अपने में थोड़ा वीरता का गुण बढ़ावें। वह हो तो मुझे एक बड़ा सुझाव देना है। मुझे आशा है कि तुममें से अधिकांश अविवाहित हैं और

ख़ासी संख्या ब्रह्मचारियों की भी है। मुझे 'ख़ासी संख्या' कहना पड़ता है, क्योंकि मैं विद्यार्थियों को जानता हूं; जो विद्यार्थी अपनी बहन को वासना-पूर्ण दृष्टि से देखता है, वह ब्रह्मचारी नहीं है। मैं चाहता हूं कि तुम यह पवित्र प्रतिज्ञा कर लो कि जो लड़की विधवा नहीं है उससे तुम शादी नहीं करोगे, तुम किसी विधवा लड़की को खोज निकालोगे, और यदि तुम्हें विधवा लड़की न मिल सके तो तुम शादी ही नहीं करोगे। यह संकल्प कर लो, दुनिया में इसकी घोषणा कर दो, और मां-बाप और बहनें हों तो उन पर भी प्रगट कर दो। मैं ग़लती को सुधारने की दृष्टि से विधवा लड़कियां कहता हूं, क्योंकि मेरा विश्वास है कि दस-पन्द्रह वर्ष की बच्ची, जिसने तथाकथित विवाह की अनुमति नहीं दी हो, जो विवाह के बाद तथाकथित पति के साथ कभी रही न हो और जो अचानक विधवा घोषित कर दी जाती हो, विधवा नहीं है। यह उस शब्द का और भाषा का दुरुपयोग है और बड़ा पाप है।

बाल-विधवा से विवाह करो

हिन्दू धर्म में विधवा शब्द पवित्र माना जाता है। मैं स्व० श्रीमती रमाबाई रानडे जैसी सच्ची विधवा का पुजारी हूं। वे जानती थीं कि विधवा होना क्या चीज़ है। परन्तु नौ वर्ष की बच्ची कुछ नहीं जानती कि पति कैसा होना चाहिये। यदि यह सच न हो कि इस प्रान्त में ऐसी बाल-विधवायें हैं, तो मेरी बात ही ख़त्म हो जाती है। परन्तु

ऐसी बाल-विधवायें हों, तो तुम्हारा यह पवित्र कर्त्तव्य हो जाता है कि इस अभिशाप से मुक्त होने के लिये तुम किसी बाल-विधवा से विवाह करने का दृढ़ निश्चय करो। मैं यह मानने जितना अन्ध-विश्वासी हूं कि कोई देश इस तरह के पाप करता है, तो उसे इन पापों का दण्ड भुगतना पड़ता है, मैं मानता हूँ कि हमारे इन सारे पापों ने ही हमें ग़ुलामी की हालत में डाल दिया है। ब्रिटेन की लोकसभा भले तुम्हारे लिये बढ़िया से बढ़िया संविधान बना कर दे दे, परन्तु यदि उसे अमल में लाने के लिये योग्य पुरुष और स्त्रियां न होंगी, तो वह संविधान निकम्मा साबित होगा। क्या तुम समझते हो कि जब तक एक भी विधवा ऐसी है जो अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहती है, परन्तु उसे ऐसा करने से जबरन् रोका जाता है, तब तक हम अपने को ऐसे मनुष्य कह सकते हैं, जो अपना या दूसरों का शासन करने या ३० करोड़ के राष्ट्र के भाग्य-विधाता बनने योग्य हैं? यह धर्म नहीं, अधर्म है। मैं यह बात इसलिये कहता हूं कि हिन्दुत्व की भावना मेरी रग-रग में समाई हुई है। भूल से यह न समझ लेना कि मुझमें पाश्चात्य भावना बोल रही है। मेरा दावा है कि मुझमें विशुद्ध भारतीय भावना ओतप्रोत है। मैंने पश्चिम से बहुत-सी चीज़ें लेकर पचा ली हैं, परन्तु यह चीज़ नहीं। हिन्दू धर्म में[1]

---

[1]जहां हिन्दू धर्म में सच्चे वैधव्य का गौरव है, और वह सर्वथा उचित है, वहां मेरी जानकारी में इस विश्वास के लिये कोई आधार नहीं है कि वैदिक काल में विधवाओं

इस प्रकार के वैधव्य का कोई आधार नहीं है।

ब्राह्मण विद्यार्थियों को

जो कुछ मैंने बाल-विधवा के विषय में कहा है, वही बाल-पत्नियों के लिये भी। अवश्य ही तुम में अपनी कामवासना पर इतना क़ाबू तो होना ही चाहिये कि तुम १६ वर्ष से कम आयु की लड़की से विवाह नहीं करो। अगर मेरी चले तो मैं विवाह की उम्र कम से कम २० वर्ष रखूं। भारत में भी २० वर्ष की उम्र काफ़ी जल्दी मानी जायगी। लड़कियों की बाल-प्रौढ़ता के लिये हम खुद ही ज़िम्मेदार हैं, भारत का जलवायु नहीं; क्योंकि मैं २० वर्ष की ऐसी लड़कियों को जानता हूं, जो शुद्ध और अछूती हैं और अपने चारों ओर गरजते हुए तूफ़ान का सामना कर सकती हैं। हमें इस बाल-प्रौढ़ता से चिपटे न रहना चाहिये। कुछ ब्राह्मण विद्यार्थी मुझसे कहते हैं कि वे इस सिद्धान्त पर अमल नहीं कर सकते, उन्हें सोलह वर्ष की

के पुनर्विवाह का सर्वथा निषेध था। परन्तु मेरा जिहाद वास्तविक वैधव्य के विरुद्ध नहीं है। मेरा विरोध उसके निर्दय मज़ाक़ के लिए है। बेहतर तरीक़ा यह है कि जिन लड़कियों से मेरी सलाह का सम्बन्ध है उन्हें विधवा समझा ही न जाय। हरएक हिन्दू का, जिसमें थोड़ा भी शौर्य का भाव हो, यह धर्म है कि वह उन्हें इस असहनीय जुये से मुक्त कराये। इसलिये मैं नम्रतापूर्वक, परन्तु आग्रह के साथ प्रत्येक हिन्दू युवक को फिर से यह सलाह देता हूं कि वह उन कुमारियों के अलावा, जिन्हें भूल से विधवा कहा जाता है, किसी और से शादी करने से इनकार कर दे।

—यंग इंडिया : ६-१०-'२७

ब्राह्मण लड़कियां नहीं मिल सकतीं, बहुत थोड़े ब्राह्मण अपनी लड़कियों को उस उम्र तक कुंआरी रखते हैं और ब्राह्मण कन्यायें ज़्यादातर १०, १२ और १३ वर्ष से पहले ही ब्याह दी जाती हैं। तब मैं ब्राह्मण युवकों से कहूंगा, 'यदि तुम संयम नहीं रख सकते तो ब्राह्मण मत रहो। १६ वर्ष की किसी ऐसी प्रौढ़ लड़की को चुन लो, जो बचपन में विधवा हो गई हो। यदि उस आयु की ब्राह्मण विधवा न मिले तो जाकर अपनी पसन्द की कोई भी लड़की ले आओ।' और मैं तुमसे कहता हूं कि हिन्दुओं का ईश्वर उस लड़के को क्षमा कर देगा, जिसने १२ वर्ष की लड़की के साथ बलात्कार करने के बजाय अपनी जाति के बाहर विवाह करना अधिक पसन्द किया है। जब तुम्हारा हृदय शुद्ध नहीं है और तुम अपने विकारों पर क़ाबू नहीं रख सकते, तब तुम शिक्षित मनुष्य नहीं रह जाते। तुमने अपनी संस्था को एक प्रमुख संस्था बताया है। मैं चाहता हूं कि तुम्हारा जीवन इस प्रमुख संस्था के नाम के अनुसार रहे। इस संस्था को ऐसे लड़के पैदा करने चाहिये, जो चरित्र में अव्वल दर्जे के हों। चरित्र के बिना शिक्षा कैसी और प्रारम्भिक व्यक्तिगत शुद्धता के बिना चरित्र कैसा? मैं ब्राह्मणत्व की पूजा करता हूं। मैंने वर्णाश्रम-धर्म का समर्थन किया है। जो ब्राह्मणत्व अस्पृश्यता, अक्षत-योनि वैधव्य और कुमारिकाओं का बलात्कार सहन कर सकता है, उससे मुझे सख़्त नफ़रत है। यह ब्राह्मणत्व का मज़ाक़ है। इसमें कोई ब्रह्मज्ञान नहीं है। धर्मशास्त्रों का सच्चा

अर्थ नहीं है। यह शुद्ध पाशविकता है। ब्राह्मण-धर्म इससे कहीं बड़ी चीज़ है। मैं चाहता हूं कि मेरे ये थोड़े से वचन तुम्हारे हृदयों में गहरे पैठें। आप देश की आशा हैं और जो कुछ मैंने कहा है वह आप के लिये बड़ी महत्त्व की बात है।

—यंग इंडिया : १५-६-'२७

: ५१ :

सिंहली विद्यार्थियों से

यहां श्रीलंका में ज्यादातर लड़के बौद्ध धर्म के प्रभाव-क्षेत्र में आते हैं। उस महापुरुष ने हमें सम्यक् मार्ग दिखलाया और तुम सब लड़के इसी तरह की संस्थाओं में[1] सम्यक् मार्ग को जानने के लिये ही आते हो, लेकिन सही राह जानने का मतलब सिर्फ़ यही नहीं है कि तुम लोग सुनने में अच्छी और मीठी मालूम होने वाली बातों से दिमाग़ को भर लो बल्कि यह कि सही आचरण करो।

सम्यक् पथ का पहला सूत्र है सच बोलना, सच सोचना और सच का आचरण करना; और दूसरा सूत्र है हर जीवित प्राणी को प्यार करना। गौतम बुद्ध अनुग्रह और दया से इतने भरे थे कि उन्होंने ही हमें यह सिखलाया कि मानव परिवार

[1] आनन्द कॉलेज, कोलम्बो।

के सदस्यों को ही नहीं, सारे पशु-जगत् को हमें प्यार करना चाहिये। उन्होंने ही हमें निजी जीवन की पवित्रता सिखलायी। इसलिये, अगर तुम लड़कों में सत्य, अनुग्रह और दया के भाव नहीं हैं, अगर तुम लोग अपने निजी आचरण में शुद्ध नहीं हो, तो तुम्हारे लिये इस संस्था में सीखने को कुछ भी नहीं है।

बुद्ध की शिक्षाएं

तुम लोगों को यहां[१] उस मार्ग की शिक्षा दी जाती है जिसे बुद्ध महान् ने संसार को दिया था। और अगर तुम लोग अपने निजी जीवन में बुद्ध की शिक्षाओं को नहीं उतारते हो, तो तुम्हारा इस संस्था में होना बेकार है और तुम बुद्ध की शिक्षाओं के सच्चे प्रतिनिधि नहीं माने जा सकोगे। जब तक कि तुम लोग गौतम बुद्ध की असली शिक्षा को अपने जीवन में नहीं उतारोगे, दूसरी सारी सीखी गयी चीजें बिलकुल बेकार होंगी। उनकी शिक्षा थी सही मार्ग चलना, सही बोलना, सही सोचना और सही आचरण करना। उन्होंने हमें मानव-परिवार के पवित्र नियम सिखलाये। उनका प्रेम, उनका असीम प्रेम मनुष्यों के समान ही निचले पशुओं और सबसे निचले जीवधारियों तक गया। और उन्होंने जीवन की पवित्रता पर ज़ोर दिया।

मुझे कोई सन्देह नहीं कि आपके शिक्षक आपसे

[१] नालन्दा विद्यालय, कोलम्बो।

बार-बार कहते होंगे कि आपको जो मानसिक और साहित्यिक तालीम मिलती है वह आपके कुछ भी काम नहीं आयेगी, यदि उसका आधार सत्य और प्रेम नहीं है। सत्य से आप बहादुर और निर्भय मनुष्य बनेंगे और जहां कहीं जायेंगे अच्छी कारगुज़ारी दिखायेंगे। प्रेम से आपके लिये जीवन सह्य बनेगा, क्योंकि प्रेम में यह विशेष गुण है कि उसका बदला विपुल प्रेम से मिलता है।

भगवान आपको दिन-दिन इन गुणों का अपने भीतर विकास करने में सहायता दे।

—विथ गांधीजी इन सीलोन : पृ० ५०

: ५२ :

बर्मा के विद्यार्थियों से

आपने विद्यार्थी-जगत् के सिलसिले में मेरे लिये जिस सम्मान का दावा किया है, उसे स्वीकार करने का मुझमें साहस नहीं है। परन्तु एक और सम्मान का दावा करने का मैं प्रयत्न कर रहा हूं और वह है छात्र-जगत् का सेवक बनने का—केवल भारत या बर्मा का ही नहीं, बल्कि अगर यह दावा बहुत बड़ा न हो तो विश्वभर के छात्र जगत् का सेवक बनने का। मैं पृथ्वी के दूरतम स्थानों के कुछ विद्यार्थियों के सम्पर्क में हूं और यदि ईश्वर जीवन के कुछ और वर्ष मुझे देगा, तो शायद मैं वह दावा सच्चा सिद्ध कर सकूंगा।

केवल किताबी पढ़ाई काम की नहीं

आपने कहा है कि आप में ज़िम्मेदारी की भावना नहीं है। ग़ैर-ज़िम्मेदारी की यह वृत्ति मर्यादा में रहे तब तक भले वह आप में रहे। परन्तु जिस क्षण आप इस मर्यादा का उल्लंघन करेंगे उसी क्षण आप विद्यार्थी नहीं रह जायेंगे। विद्यार्थी अपना ज्ञानप्राप्ति का कार्य छोड़ते ही विद्यार्थी मिट नहीं जाता। इस दृष्टि से पिछले ४० वर्षों के जीवन को देखते हुए मैं पाता हूं कि जब मैंने पढ़ाई छोड़ दी तब मैं विद्यार्थी-जीवन के द्वार में प्रवेश कर रहा था। और मुझसे, जिसने जीवन का थोड़ा अनुभव लिया है, आप यह समझ लीजिये कि उत्तर जीवन में केवल किताबी पढ़ाई आपको बहुत काम नहीं देगी। भारत भर के विद्यार्थियों से पत्र-व्यवहार करने के कारण मुझे मालूम है कि गाड़ी भर पुस्तकों से प्राप्त जानकारी से अपने मस्तिष्कों को भर कर उन्होंने अपना कितना नाश कर लिया है। कुछ का मानसिक संतुलन नष्ट हो गया है, कुछ पागल हो गये हैं और कुछ निःसहाय होकर अशुद्ध जीवन व्यतीत कर रहे हैं। मेरा हृदय दया से भर जाता है, जब वे कहते हैं कि कितना ही प्रयत्न करने पर भी वे जैसे के तैसे रहते हैं, क्योंकि वे शैतान पर क़ाबू नहीं पा सकते। वे दीन बनकर पूछते हैं, 'हमें बताइये, हम इस शैतान से कैसे पिण्ड छुड़ायें? जिस अपवित्रता ने हमें ग्रसित कर लिया है उससे हम कैसे मुक्त हों?' जब मैं उन्हें रामनाम लेने और ईश्वर के सामने घुटने टेककर उसकी सहायता

मांगने को कहता हूं, तो वे आकर मुझसे कहते हैं, 'हमें पता नहीं ईश्वर कहां है; हम नहीं जानते प्रार्थना क्या होती है।' उनकी यह दशा हो गई है।

विद्यार्थी सचेत रहें

इसलिये मैं विद्यार्थियों से कहता रहता हूं कि वे सचेत रहें और जो भी साहित्य उनके हाथ लग जाय वह सभी न पढ़ें। उनके शिक्षकों से मैं यह कहता हूं कि वे अपने हृदयों का परिष्कार करें और विद्यार्थियों से हृदय का सम्पर्क स्थापित करें। मैंने यह अनुभव किया है कि शिक्षकों का काम व्याख्यान-भवन के भीतर की अपेक्षा बाहर अधिक है। इस दुनियादारी के जीवन में, जहां शिक्षकों और अध्यापकों को पेट के लिये काम करना पड़ता है, उन्हें विद्यार्थियों को कक्षा-भवन से बाहर कुछ देने के लिये समय नहीं मिलता। और आजकल के विद्यार्थियों के जीवन और चरित्र के विकास में यही सब से बड़ी रुकावट है। परन्तु जब तक शिक्षक कक्षा-भवन से बाहर का अपना सारा समय छात्रों को देने के लिये तैयार नहीं होंगे, तब तक अधिक कुछ नहीं हो सकता। उन्हें छात्रों के मस्तिष्क के बजाय उनके हृदय को तैयार करना चाहिये। वे विद्यार्थियों के कोष में से निरुत्साह और निराशा-सूचक प्रत्येक शब्द को निकाल देने में उनके सहायक हों। (हर्ष-ध्वनि)। मैं अपने हृदय में उठने-वाले भावों को आपके सामने रखने का प्रयत्न

कर रहा हूं। आपसे निवेदन है कि आप हर्ष-ध्वनि करके बीच में बाधा न पहुंचायें। वह आप के और आप के हृदयों के बीच रुकावट बन जायेगी। पवित्र ध्येय के लिये किये जानेवाले प्रयत्न में कभी मत हारिये और अब से निश्चय कर लीजिये कि आप शुद्ध बनेंगे और आप ईश्वर से अपनी प्रार्थना का उत्तर पायेंगे। ईश्वर अहंकारियों की अथवा जो लोग उस से सौदा करते हैं उनकी प्रार्थनाओं का कभी उत्तर नहीं देता।

असहायों का सहायक

आपने गजेन्द्र-मोक्ष की कहानी सुनी है? मैं यहां के बर्मी विद्यार्थियों से, जो इस महानतम काव्य को, संसार की एक अत्यन्त दिव्य वस्तु को, नहीं जानते, कहूंगा कि वे अपने भारतीय मित्रों से उसे जान लें। एक तामिल कहावत सदा मेरी स्मृति में रही है, जिसका अर्थ यह है कि ईश्वर असहायों का सहायक है। यदि आप उससे सहायता चाहते हैं, तो आप उस के पास अपने नग्न स्वरूप में जाइये, मन में कोई दुराव-छिपाव न रखकर जाइये और ऐसा भय या शंका भी न रखिये कि वह आप जैसे पतित प्राणी को कैसे सहायता दे सकता है? उसने लाखों की, जो उस के पास गये हैं, सहायता की है। तब वह आप को ही कैसे भुला देगा? वह इस में कोई अपवाद नहीं करता और आप देखेंगे कि आप की प्रत्येक प्रार्थना का उत्तर मिल रहा है। ईश्वर अत्यन्त अधम की प्रार्थना का भी उत्तर देता

है। यह मैं अपने निजी अनुभव पर से कह रहा हूं। मैं परीक्षा में से गुज़र चुका हूं। पहले स्वर्ग का राज्य प्राप्त करने की कोशिश कीजिये, फिर सब-कुछ मिल जायगा। आप अपवित्र हृदयों के साथ अपने ग्रंथों और शिक्षकों के पास मत जाइये। शुद्धतम हृदय के साथ उनके पास जाइये और आप उनसे जो भी चाहेंगे, प्राप्त कर लेंगे। यदि आप देशभक्त--सच्चे देशभक्त--और निर्बलों के रक्षक होना चाहते हैं, आप को प्राप्त होनेवाली शिक्षा से वंचित रहनेवाले ग़रीबों तथा दबे हुए लोगों के उद्धार-कार्य के यदि आप समर्थक बनना चाहते हैं, यदि आप बर्मा की प्रत्येक लड़की और स्त्री के शील के संरक्षक बनना चाहते हैं, तो पहले आप अपने हृदयों को शुद्ध बनायें। यदि आप अपने जीवन-ध्येय की ओर ऐसी भावना से बढ़ेंगे, तो सब-कुछ ठीक हो जायेगा।

—*यंग इंडिया : ४-४-'२९*

: ५३ :

उत्तर प्रदेश के विद्यार्थियों से

आप का सारा पांडित्य, आप का शेक्सपीयर और वर्ड्स्वर्थ का तमाम अध्ययन व्यर्थ होगा, यदि साथ-साथ आप अपना चरित्र-निर्माण नहीं करेंगे और अपने विकारों और कार्यों पर प्रभुत्व प्राप्त नहीं करेंगे। जब आप अपने पर क़ाबू पा

लेंगे और अपने को वश में रखना सीख जायंगे, तब आप निराशा के स्वर नहीं निकालेंगे। यह नहीं हो सकता कि आप अपना हृदय तो दे दें, परन्तु कर्म में कायरता दिखायें। हृदय देना सर्वस्व देना ही है। आप के पास पहले तो देने के लिये दिल होने चाहिये। और दिल आप तभी दे सकते हैं जब आप उन्हें परिष्कृत बनायें।

शक्ति को नष्ट न करें

परन्तु इसके स्थान पर आज हम क्या देखते हैं? मैंने सुना है कि आजकल उत्तर प्रदेश में लड़कों के विवाह मां-बाप के मजबूर करने से नहीं, बल्कि उनकी अपनी ही आग्रहपूर्ण इच्छा से होते हैं। विद्यार्थी-काल में आप से आशा की जाती है कि आप अपनी शक्ति को नष्ट न करके उसकी रक्षा करेंगे। मैं देखता हूं कि आप में से आधे से ज़्यादा विवाहित हैं। यदि आप बिगड़ी हुई बात को बनाना चाहें तो शादी हो जाने पर भी आप अपने विकारों पर कठोर संयम रखें और अपने अध्ययन-काल में शुद्ध ब्रह्मचर्य का जीवन बितायें। फिर आप देखेंगे कि अध्ययन-काल के अन्त में संयम रखने से आप का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक कल्याण ही हुआ है। आप किसी प्रकार यह न सोचिये कि मैं आप के सामने कोई ऐसी चीज़ रख रहा हूं, जिस पर बिलकुल अमल नहीं किया जा सकता। जो लोग विवाहित होकर भी पूर्ण संयम रख रहे हैं, उनका पंथ

बढ़ रहा है। इससे स्वयं उनको बहुत लाभ है और मानव-जाति को आम तौर पर फ़ायदा है।

प्रलोभन को रोकें

अविवाहितों से मैं यह अनुरोध करूंगा कि वे ग़लत आकर्षणों से बचें। आखिर हम सभी ग़ुलामी की ज़ंजीरों को तोड़ डालने के लिये संघर्ष में लगे हुए एक ग़ुलाम राष्ट्र के नागरिक हैं। तुम लोगों को तो ज़रूर ही समझना चाहिये कि ग़ुलाम बच्चों को जन्म देना कितना बड़ा पाप है। तमाम कालेजों से, जिन से तुम्हारा कालेज बाहर नहीं है, नौजवान लोग अपनी मानसिक कमज़ोरी को दूर करने के तरीक़े पूछते हुए मेरे पास ऐसे पत्र लिखते हैं कि तरस आता है। मैंने उन लोगों को वही पुराना नुस्ख़ा बतला दिया है। अगर वे लोग अपनी सारी कमज़ोरी क साथ ईश्वर की सहायता की याचना करेंगे तो वे अपने को असहाय नहीं अनुभव करेंगे।

विवाह पर ख़र्च

जिस साथी ने मुझे विवाह के दोष की बातें लिखी थी, उसी ने मुझ से यह शिकायत भी की थी कि विद्यार्थी लोग अपने माता-पिता को अपने विवाह में फ़िज़ूलख़र्ची करने को बाध्य करते हैं। अवश्य ही तुम्हें मालूम होना चाहिये कि विवाह एक धार्मिक संस्कार है और उसके लिये कोई ख़र्च नहीं होना चाहिये। जिन के पास रुपया है वे खाने-पीने और आमोद-प्रमोद पर

खर्च करने की इच्छा को दबायेंगे नहीं, तो ग़रीब लोगों को उनकी नक़ल करने की इच्छा होगी और उसके लिये वे क़र्ज़ कर लेंगे। इसलिये यदि तुम बहादुर हो तो जब तुम्हारी विवाह की तैयारी हो तब फ़िज़ूलख़र्ची के विरुद्ध विद्रोह करोगे।

—यंग इंडिया : १६-६-'२६

: ५४ :

एक युवक की समस्या

प्र०—मैं २२ वर्ष का युवक हूं। यदि मैं विवाह न करना चाहूं तो क्या मेरे लिये अपने पिता की विवाह-सम्बन्धी बात मानने से इन्कार करना, उचित होगा ?

उ०—शास्त्रों और विचार शक्ति के अनुसार जब बच्चे बालिग़ हो जाते हैं, जिनकी आयु शास्त्रों के अनुसार १६ वर्ष मानी गई है। तब वह माता पिता के मित्र बन जाते हैं अर्थात् माता-पिता के दबाव से मुक्त हो जाते हैं। फिर भी उनका कर्तव्य है कि वह उनकी सम्मति लें और जहां तक बन पाये उनकी इच्छा अनुसार चलें। आप सियाने हैं और विवाह जैसे गम्भीर बात में, आप आदर सहित विवाह करने से इन्कार कर

दें यदि वह आप के पसंद का नहीं या और कोई उचित कारण हो।[1]

—हरिजन : ३-१०-१९४०

: ५५ :

एक विद्यार्थी की दुविधा

एक विद्यार्थी पूछता है:

"कोई मैट्रिक पास या कालेज में पढ़नेवाला युवक दुर्भाग्यवश दो-तीन बच्चों का बाप हो गया हो, तो उसे आजीविका प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिये ?"

विद्यार्थी ने यह नहीं बताया कि उसकी आवश्यकतायें कितनी हैं। यदि उसने मैट्रिक पास होने के कारण अपनी आवश्यकताओं का पैमाना बहुत ऊंचा नहीं रखा है और अगर वह अपने को मामूली मज़दूर के बराबर समझता है, तो उसे गुज़र के लायक़ कमाने में कोई कठि-

---

[1] "विद्यार्थियों को जबरन लादी जाने वाली किसी शादी का विरोध करने के लिये अपने भीतर काफ़ी संकल्पबल पैदा कर लेना चाहिये। विद्यार्थियों को अकेले खड़े रहने की कला सीख लेनी चाहिये और उनकी इच्छा के विरुद्ध जबरन कुछ भी कराने के प्रयत्न का हर उचित ढंग से मुक़ाबला करना चाहिये। उनकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करने के मामले में तो यह और भी जरूरी है।"

—हरिजन : ९-१-'३७

नाई नहीं होनी चाहिये। उसकी बुद्धि उसके हाथ-पैरों की मदद करेगी और जिस मजदूर को अपनी बुद्धि का विकास करने का अवसर नहीं मिला है उससे उसका काम ज़्यादा अच्छा होगा। इसका यह मतलब नहीं है कि जो मज़दूर कभी अंग्रेज़ी नहीं पढ़ता उसमें बुद्धि नहीं होती। दुर्भाग्यवश हमारे मज़दूरों को मस्तिष्क का विकास करने में कभी सहायता नहीं दी गई। और जो लोग स्कूलों से निकलते हैं उनकी बुद्धि बेशक कुछ तो विकसित होती है, परन्तु उनके सामने ऐसी बाधायें होती हैं जो दुनिया में और कहीं नहीं पाई जातीं। लेकिन स्कूल और कालेज की शिक्षा के दिनों में पैदा हुई झूठी प्रतिष्ठा के विचारों के कारण इस मानसिक विकास से भी वे कोई लाभ नहीं उठा पाते। इस कारण विद्यार्थी समझते हैं कि वे कुर्सी-टेबल पर बैठकर ही अपनी आजीविका कमा सकते हैं। इसलिये प्रश्नकर्ता को शरीर-श्रम का गौरव समझ लेना चाहिये और उस क्षेत्र में अपने और अपने परिवार के गुज़ारे का साधन ढूंढ़ना चाहिये।

और फिर उसकी स्त्री को भी फ़ालतू समय का सदुपयोग करके परिवार की आय क्यों नहीं बढ़ानी चाहिये? इसी प्रकार यदि बच्चे भी कोई काम करने योग्य हों, तो उन्हें भी उत्पादक कार्य में लगाना चाहिये। बुद्धि का विकास किताबें पढ़ने से ही हो सकता है, यह ग़लत ख़्याल है। इसका स्थान इस सत्य को दिया जाना चाहिये कि वैज्ञानिक ढंग से दस्तकारी सीखने से मस्तिष्क

का जल्दी से जल्दी विकास हो सकता है। मन का सच्चा विकास उसी वक़्त से शुरू हो जाता है, जब सीखनेवाले को हर क़दम पर यह बताया जाता है कि हाथ या औज़ार की कोई भी विशेष क्रिया क्यों की जानी चाहिये। विद्यार्थी अगर अपने को साधारण मज़दूरों में गिनने लगें, तो उनकी बेकारी की समस्या बिना किसी कठिनाई के हल की जा सकती है।

—हरिजन : ९-१-'३७

: ५६ :

किताबी ज्ञान

यह समझना घोर अन्धविश्वास है कि ज्ञान पुस्तकों से ही मिलता है। हमें इस ग़लती से पल्ला छुड़ाना ही चाहिये। पुस्तकें पढ़ने का जीवन में एक स्थान है ज़रूर, लेकिन वह अपनी ही जगह उपयोगी है। अगर शारीरिक मेहनत की जगह किताबी ज्ञान प्राप्त किया जाता है तो हमें इसके विरुद्ध विद्रोह कर देना चाहिये। हमारा अधिकांश समय शारीरिक मेहनत में ही बीतना चाहिये। और पढ़ाई में थोड़ा ही। भारत में तो यह होता है कि धनी और तथाकथित ऊंचे वर्ग के लोग शारीरिक मेहनत को तुच्छ समझते हैं, (लेकिन) मेहनत को गौरव दिये जाने का आग्रह ज़रूरी है। सच्चे बौद्धिक विकास के लिये भी

उपयोगी शारीरिक मेहनत का किया जाना ज़रूरी है।

—आश्रम ऑबज़रवन्सेज़ इन ऐक्शनः पृ० ६५

: ५७ :

शिक्षितों की बेकारी

प्र०—शिक्षितों की बेकारी की समस्या भयंकर रूप धारण कर रही है। आप बेशक उच्च शिक्षा की निन्दा करते हैं, परन्तु हम में से जो विश्वविद्यालय की शिक्षा ले चुके हैं वे समझते हैं कि वहां हमारा मानसिक विकास ज़रूर होता है। विद्या प्राप्त करने से आप किसी को हतोत्साह क्यों करें? क्या बेहतर हल यह न होगा कि बेकार स्नातक जनसाधारण की शिक्षा में लग जायं और बदले में ग्रामवासी उन्हें भोजन दें? क्या प्रांतीय सरकारें उन्हें थोड़ा-सा रुपया और कपड़ा देकर उनकी सहायता नहीं कर सकतीं?

उ०—मैं उच्च शिक्षा के विरुद्ध नहीं हूं। परन्तु मैं इस बात के विरुद्ध हूं कि वह शिक्षा कुछ लाख लड़के-लड़कियों को ग़रीब करदाताओं के ख़र्च पर दी जाय। इसके अलावा आज जिस ढंग की उच्च शिक्षा दी जाती है उसके भी मैं विरुद्ध हूं। यह तो ऊंची दुकान और फीके पकवान है। उच्च शिक्षा ही क्यों, सारी शिक्षा-पद्धति

में ही जड़मूल से सुधार होने की ज़रूरत है। परन्तु आप की कठिनाई तो बेकारी से सम्बन्ध रखती है। इसमें मेरी आप के साथ सहानुभूति और सहयोग है। इस सिद्धान्त पर कि हर मज़दूर को उसके परिश्रम का फल मिलना ही चाहिये, गांव की सेवा के लिये जाने वाला हर एक स्नातक ग्रामवासियों की तरफ़ से मकान, अन्न और वस्त्र पाने का हक़दार है। और वे देते भी हैं। परन्तु जब स्नातक 'साहब लोगों' की तरह रहे और उनके बूते से दस गुना ख़र्च करे तब वे नहीं देंगे। उसका जीवन यथाशक्ति ग्रामवासियों के जीवन से मिलता-जुलता होना चाहिये और उसका मिशन ऐसा होना चाहिये जिसकी वे क़द्र कर सकें।

—हरिजन : ९-३-'४०

: ५८ :

विद्यार्थी और ग्रामसेवा

हम एक ग्रामीण सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं। हमारे देश की विशालता, हमारी जनसंख्या की विशालता और देश की जलवायु एवं स्थिति ने मेरी राय में हमारे भाग्य में ग्रामीण सभ्यता ही लिख दी है। उसके दोष सब के जाने हुए हैं, मगर उनमें से एक भी लाइलाज नहीं है। उसे उखाड़कर उस के स्थान पर शहरी सभ्यता स्थापित करना मुझे असंभव प्रतीत होता है, सिवा इसके

कि हम किसी कठोर उपाय द्वारा आबादी को तीस करोड़ से घटाकर तीस लाख या तीन करोड़ कर देने को तैयार हों। इसलिये मैं यह मानकर उपाय सुझा सकता हूं कि हमें सदा वर्तमान ग्रामीण सभ्यता ही क़ायम रखनी है और उसके माने हुए दोष दूर करने हैं। यह तभी हो सकता है जब देश के नौजवान देहाती जीवन अपना कर गांवों में बस जायं। और यदि वे यह करना चाहते हों, तो उन्हें अपने जीवन का पुनर्गठन करना होगा और अपनी छुट्टियों का प्रत्येक दिन अपने कालेज या हाई स्कूल के आसपास के देहात में बिताना होगा; और जिन्होंने अपनी शिक्षा पूरी कर ली है या जो कोई शिक्षा नहीं पा रहे हैं, उन्हें देहात में बस जाने का विचार करना चाहिये। उन्हें देहात में घुसना चाहिये और सेवा, खोज तथा सच्चे ज्ञान का असीम क्षेत्र उपलब्ध करना चाहिये। अच्छा हो कि अध्यापकगण लड़के-लड़कियों पर छुट्टियों में साहित्य के अध्ययन का बोझा न लादकर उनके लिये देहात के शिक्षात्मक प्रवासों का कार्यक्रम नियत करें।

—यंग इंडिया : ७-११-'२८

: ५९ :

निश्चित सूचनाएं

विद्यार्थियों को अपनी सारी छुट्टियां ग्राम-

सेवा में लगानी चाहिये । इसके लिये उन्हें मामूली रास्तों पर घूमने जाने के बजाय उन गांवों में जाना चाहिये, जो उनकी संस्थाओं के पास हों। वहां जाकर उन्हें गांव के लोगों की हालत का अध्ययन करना चाहिये और उनसे दोस्ती करनी चाहिये। इस आदत से वे देहात वालों के सम्पर्क में आयेंगे । और जब विद्यार्थी सचमुच उनमें जाकर रहेंगे तब पहले के कभी-कभी के सम्पर्क के कारण गांव वाले उन्हें अपना हितैषी समझ कर उनका स्वागत करेंगे, न कि अजनबी मान कर उन पर सन्देह करेंगे । लम्बी छुट्टियों में विद्यार्थी देहात में ठहरें, पौढ़शिक्षा के वर्ग चलायें, ग्रामवासियों को सफ़ाई के नियम सिखायें और मामूली बीमारियों के बीमारों की दवा-दारू और देखभाल करें। वे उनमें चरखा भी जारी करें और उन्हें अपने हर फ़ालतू समय का उपयोग करना सिखायें । यह काम कर सकने के लिये विद्यार्थियों और शिक्षकों को छुट्टियों के उपयोग के बारे में अपने विचार बदलने होंगे। अक्सर विचारहीन शिक्षक छुट्टियों में घर करने के लिये पढ़ाई का काम दे देते हैं । मेरी राय में यह आदत हर तरह से बुरी है । छुट्टियों का समय ही तो ऐसा होता है, जब विद्यार्थियों का मन पढ़ाई के रोज़मर्रा के कामकाज से मुक्त रहना चाहिये और स्वावलम्बन तथा मौलिक विकास के लिये स्वतंत्र रहना चाहिये । मैंने जिस ग्राम-सेवा का ज़िक्र किया है, वह मनोरंजन और हल्की शिक्षा का उत्तम रूप है । स्पष्ट ही यह पढ़ाई ख़त्म करने के बाद

केवल ग्राम-सेवा के काम में लग जाने की सबसे अच्छी तैयारी है।

सम्पूर्ण ग्राम-सेवा की योजना का अब लम्बा-चौड़ा वर्णन करने की ज़रूरत नहीं रह जाती। जो कुछ छुट्टियों में किया गया था, उसे अब स्थायी रूप देना है। देहात वाले भी इस काम में अधिक सहयोग देने को तैयार होंगे। अब देहाती जीवन के आर्थिक, स्वास्थ्य-सम्बन्धी, सामाजिक और राजनीतिक सभी पहलुओं को छूना पड़ेगा। इसमें शक़ नहीं कि अधिकांश लोगों के लिये चरखा ही आर्थिक संकट-निवारण का तात्कालिक साधन है। इससे ग्रामवासियों की आमदनी तुरन्त बढ़ जाती है और वे बुराई में फंसने से बच जाते हैं। स्वास्थ्य-विज्ञान सम्बन्धी कार्य में गंदगी और बीमारी दोनों का इलाज आ जाता है। इसमें विद्यार्थियों से आशा रखी जाती है कि वे अपने ही शरीर से काम लेंगे और पाखाना व दूसरा कचरा गाड़ने और उनका खाद बनाने के लिये खाइयां खोदेंगे तथा कुओं और तालाबों की सफ़ाई के लिये, आसान बांध बांधने के लिये, कचरा हटाने के लिये तथा आमतौर पर गांवों को अधिक रहने लायक़ बनाने के लिये शरीर-श्रम करेंगे। ग्रामसेवक को सामाजिक पहलू को भी छूना होगा और लोगों को प्रेमपूर्वक समझा-बुझाकर उन से कुरीतियां और दुर्व्यसन—जैसे छुआछूत, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, शराब-ख़ोरी और नशेबाज़ी तथा बहुत से स्थानीय अंधविश्वास—छुड़वाने होंगे। अंत में राजनीतिक

पहलू आता है। इसमें कार्यकर्ता गांव वालों की राजनीतिक शिकायतों का अध्ययन करेगा और उन्हें स्वतंत्रता, स्वावलम्बन और हर बात में आत्म-निर्भरता का गौरव सिखायेगा। मेरी राय में इससे प्रौढ़शिक्षा का काम पूरा हो जाता है। परन्तु इससे ग्रामसेवक का काम पूरा नहीं होता। उसे बच्चों को अपनी निगरानी में लेकर उनकी शिक्षा शुरू कर देनी चाहिये और प्रौढ़ों के लिये रात्रि-पाठशाला चलानी चाहिये। यह साक्षरता की शिक्षा सम्पूर्ण शिक्षाक्रम का ही एक भाग है और उपर्युक्त बड़े उद्देश्य की पूर्ति का एक साधन मात्र है।

मेरा दावा है कि इस सेवा के लिये दो ज़रूरी शर्तें हैं, विशाल हृदय और असंदिग्ध चरित्र। ये दो चीज़ें हों तो और सब आवश्यक योग्यतायें अपने-आप आ जायंगी।

दाल-रोटी का सवाल

आख़िरी सवाल दाल-रोटी का है। मेहनत-मजदूरी करनेवाले को पूरी मज़दूरी मिलनी ही चाहिये। जीवन-वेतन अवश्य मिलता है। इससे अधिक रुपया उसके पास नहीं है। हम अपनी और देश की सेवा एक साथ नहीं कर सकते। अपनी सेवा देश की सेवा से पूरी तरह मर्यादित है और इसलिये इस अत्यन्त ग़रीब देश के बूते से बाहर की आजीविका के लिये उसमें गुंजाइश नहीं है। हमारे ग्रामवासियों की सेवा ही स्व-

राज्य-स्थापना का एकमात्र मार्ग है। और सब बातें खाली सपने हैं।

—यंग इंडिया : २६-१२-'२९

: ६० :

विद्यार्थी और हरिजन-सेवा

मैंने अनेक बार कहा है कि यदि अस्पृश्यता हिन्दू हृदय से सर्वथा मिट जाय तो इसके दूरवर्ती परिणाम होंगे; क्योंकि इसका सम्बन्ध लाखों मनुष्यों से है। जैसा मैंने कल रात को नागपुर की बड़ी सभा में कहा था, यदि हिन्दुओं के दिलों से अछूतपन सचमुच निकल जाय अर्थात् उच्च जाति के हिन्दू अपने को इस भयंकर कलंक से मुक्त कर लें, तो हमें जल्दी ही पता चल जायगा कि हम सब एक हैं और हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी या किसी भी नाम वाली अलग-अलग जातियां नहीं हैं। एक बार अस्पृश्यता की दीवार हट जाय, तो हम सब एकता अनुभव करने लगेंगे।

विद्यार्थियों को सारा नहीं तो थोड़ा-सा फ़ालतू समय हज़ारों हरिजन भाइयों की सेवा में अवश्य लगाना चाहिये।....

मैंने देखा है कि मुझे अपना फ़ालतू समय देने वाले बहुत से सहायक मिल जायं तो बहुत ज़्यादा काम हो सकता है। यह काम किराये

के परिश्रम से नहीं हो सकता। वैतनिक कार्य-कर्ताओं को लेकर हम हरिजन-मुहल्लों में नहीं जा सकते, उनकी सड़कों पर झाड़ू नहीं लगा सकते, उनके घरों में प्रवेश नहीं कर सकते और उनके बच्चों को नहला नहीं सकते।

शिक्षा की बड़ी कसौटी

एक हरिजन शिक्षक ने अपने अनुभवों के आधार पर बताया है कि यह कार्य भगीरथ प्रयत्न की अपेक्षा रखता है। जंगली बच्चे भी हरिजन बालकों से बेहतर हैं। हरिजन बच्चों की तरह जंगली बच्चे घोर दुरवस्था में डूबे नहीं होते और न ऐसे गन्दे वातावरण में रहते हैं। वैतनिक कार्य-कर्ताओं द्वारा इस समस्या का निपटारा नहीं हो सकता। कितना ही रुपया हो तो भी उसके द्वारा मैं यह काम नहीं कर सकता। यह तो तुम्हारा ही विशेषाधिकार होना चाहिये। स्कूल-कालेजों में मिलनेवाली तुम्हारी शिक्षा की यह बड़ी कसौटी है। तुम्हारी क़ीमत इस बात से नहीं आंकी जायगी कि तुम निर्दोष अंग्रेज़ी में कैसे भाषण दे सकते हो। तुम्हारी योग्यता का माप तुम्हारी ग़रीबों की सेवा से होगा, न कि तुम्हें मिलने वाले ६०) से ६००) तक की सरकारी नौकरियों से। मैं चाहता हूं कि तुम मेरी बताई हुई वृत्ति से इस काम को करो। मुझे एक भी विद्यार्थी ऐसा नहीं मिला, जिसने यह कहा हो कि वह रोज़ एक घंटा नहीं बचा सकता। यदि तुम रोज़ाना अपना रोज़-नामचा लिखो, तो तुम देखोगे कि वर्ष के ३६५

दिनों में तुम अनेक मूल्यवान घण्टे बरबाद कर देते हो। यदि तुम अपनी शिक्षा से लाभ उठाना चाहते हो, तो जब तक यह तूफ़ानी आन्दोलन चल रहा है, तब तक तुम इस काम की ओर ध्यान दो। वह सख्त है, मगर आनन्ददायक है। वह तुम्हें अपने क्रिकेट और टैनिस से भी अधिक आनन्द देगा।

मैं तुमसे कहता हूं कि तुम हरिजनों की सेवा के लिये कुछ फ़ालतू घंटे निश्चित रूप में देने की प्रतिज्ञा कर लो।

—*हरिजन : १७-११-'३३*

: ६१ :

सच्चाई का सबूत दो

यदि तुम हिन्दू समाज को पक्का विश्वास करा देना चाहते हो कि अस्पृश्यता धर्म का अंग नहीं हो सकती और वह एक भयंकर भूल है, तो तुम्हें चरित्र का विकास करना होगा और अपने जीवन से दिखा देना पड़ेगा कि यह मानना कि कुछ लोग स्पृश्य हैं और कुछ अस्पृश्य हैं धर्म नहीं, उसका विपर्यास है। यदि तुममें चरित्र नहीं होगा तो लोगों की तुममें श्रद्धा नहीं होगी। तुम्हें आम जनता में जाना-आना होगा; तुम्हें उनका हृदय-परिवर्तन करना होगा। कथित कट्टर लोग जनसाधारण के प्रतिनिधि नहीं हैं और न वे शास्त्रों के सही अर्थ को ही प्रकट करते

हैं। जनसाधारण पर उनका कोई सीधा असर नहीं हो सकता। जनता पर सच्चा प्रभाव केवल चरित्र का ही पड़ेगा। आम लोग तर्क नहीं करते। वे सिर्फ़ यह जानना चाहते हैं कि जो लोग उनमें जाते हैं वे कौन हैं? यदि उनके पास सचाई की योग्यता होगी तो जनसाधारण उनकी बात सुनेंगे। यह योग्यता नहीं होगी तो आम लोग उनकी बात पर ध्यान नहीं देंगे। ये लोग हैं जिनके बीच में तुम्हें जाना होगा और प्रकाश और आशा की किरण पहुंचानी होगी। तुम्हें उनके बीच में मेहनत से काम करना होगा और उन्हें विश्वास दिलाना होगा कि तुम उनके पास अपने मन में कोई बात छिपी रखकर या कोई हीन उद्देश्य लेकर नहीं आये हो, बल्कि उनकी सेवा करने के शुद्ध हेतु से और प्रेम तथा शांति का सन्देश लेकर उनके बीच में आये हो। तुम ऐसा करोगे तो उनकी तरफ़ से तुम्हें तुरन्त उत्तर मिलेगा।

—*हरिजन : २६-१२-'३३*

: ६२ :

बालचर क्या कर सकते हैं

सारे सच्चे बालचरों को मेरा आशीर्वाद! दुनिया के कई हिस्सों की यात्राओं के बीच मेरी हज़ारों बालचरों से भेंट हुई है। सच्चे बालचर

बहादुर, विचारवान्, हिम्मती और बुद्धिमान होते हैं। उन्हें अपने कर्त्तव्य का पूरा ज्ञान होना चाहिये। देश के तमाम मेलों में जहां लाखों का जमाव होता है, वे व्यवस्था बनाये रखने के लिये काम करते पाये जाते हैं। मेरी इच्छा है कि वे अपना थोड़ा समय हरिजनों की सेवा में भी दिया करें। जो कोई भी हरिजनों के रहने की जगह मेरी निगाह से देखेगा, उन्हें यह विश्वास हो जायेगा कि सेवा के लिये बहुत क्षेत्र हैं बशर्ते कि किसी के उसकी इच्छा और योग्यता हो। इसके लिये असाधारण बुद्धि की ज़रूरत नहीं। जो कुछ ज़रूरी है वह यही कि हरिजनों के बीच में घुलमिल कर उनमें से ही एक बन जाया जाय।

: ६३ :

विद्यार्थी और राजनीति

धर्म-विहीन राजनीति का क़त्तई कोई अर्थ नहीं। अगर विद्यार्थी राजनीति के मंच पर भीड़ के भीड़ टूट पड़ें तो मेरे विचार में यह कोई स्वस्थ लक्षण नहीं; लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि आप को अपने विद्यार्थी जीवन में राजनीति नहीं पढ़नी चाहिये। राजनीति हमारा एक अंग है; हमें अपनी राष्ट्रीय संस्थाओं और राष्ट्रीय विकास आदि को अवश्य समझना चाहिये। यह काम हम बचपन से ही कर सकते हैं।····लेकिन

साथ-साथ हमें धार्मिक आस्था की स्थिर और अचूक रोशनी भी मिलनी चाहिये; ऐसी आस्था नहीं जो सिर्फ़ हमारी बुद्धि को भाये, बल्कि ऐसी आस्था जो हृदय पर अमिट रूप से अंकित हो। पहले तो हममें ऐसी धार्मिक चेतना पैदा होनी चाहिये और ऐसा होते ही मेरे विचार में हमारे सामने सारा जीवन खुलकर आ जाता है, और तब विद्यार्थियों और हर किसी का यह पवित्र अधिकार हो जाता है कि वे पूरे जीवन में हिस्सा बटायें, जिससे कि जब वे नौजवान हों और अपने कालेजों को छोड़ें तो वे जीवन के संघर्ष में उतरने के लिये पूरें तैयार हों। आजकल तो होता यह है कि ज़्यादातर राजनीतिक जीवन विद्यार्थी-जीवन तक ही सीमित रहता है; और जैसे ही विद्यार्थी लोग अपने कालेजों को छोड़ते हैं और विद्यार्थी-जीवन ख़त्म करते हैं, वे ग़ायब हो जाते हैं, छोटे-छोटे तनख़ाह वाली गलीज़ नौकरियां तलाशते हैं, किसी तरह की ऊंची इच्छायें नहीं रख पाते, ईश्वर के बारे में कुछ नहीं जान पाते, ताज़ी हवा और तेज़ रोशनी के बारे में कुछ नहीं जान पाते, और जिन नियमों को मैंने तुम लोगों के सामने रखा है उनको मानने से पैदा होनेवाली सच्ची और ज़बर्दस्त के बारे में कुछ नहीं जान पाते।

—स्पीचेज़ एराड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी पृ० ३८९, १६ फरवरी १६१६

: ६४ :

विद्यार्थियों की हड़ताल

मज़दूरों की हड़ताल ही काफ़ी बुरी चीज़ होती है; विद्यार्थियों की हड़ताल तो और भी ज़्यादा बुरी है, भले उसकी घोषणा उचित कारणों से हुई हो या अनुचित। वह ज़्यादा बुरी इसलिये है कि उसके परिणाम अन्त में ज़्यादा बुरे होते हैं और उसमें जो दो पक्ष भाग ले रहे हैं, उनकी एक विशेष प्रतिष्ठा है। मज़दूर अशिक्षित होते हैं; विद्यार्थी शिक्षित होते हैं और उन्हें हड़ताल करके कोई अधिक लाभ उठाना नहीं होता। इसी प्रकार मालिकों की भांति शिक्षा-संस्थाओं के संचालकों के हितों का विद्यार्थियों के हितों से संघर्ष नहीं होता। साथ ही विद्यार्थी अनुशासन की मूर्ति माने जाते हैं। इसलिये विद्यार्थियों की हड़ताल के दूरवर्ती परिणाम होते हैं और वह असाधारण परिस्थिति में ही उचित हो सकती है।

यद्यपि सुव्यवस्थित स्कूलों और कालेजों में विद्यार्थियों की हड़तालें होने के अवसर क्वचित् ही आयेंगे, फिर भी ऐसे मौक़ों की कल्पना करना असंभव नहीं है जब उनका हड़ताल करना उचित होगा। उदाहरण के लिये अगर कोई आचार्य लोकमत के विरुद्ध जाकर किसी ऐसे सार्वत्रिक हर्ष मनाने के दिन को छुट्टी मानने से इन्कार कर दे, जिसे माता-पिता और उनके स्कूल-कॉलेज जाने वाले बच्चे दोनों चाहते हों, तो उस दिन के लिए

विद्यार्थियों का हड़ताल घोषित करना उचित होगा। छात्रों की आत्म-जागृति ज्यों-ज्यों अधिक बढ़ेगी और राष्ट्र के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी का उनका ज्ञान बढ़ेगा, त्यों त्यों भारत में ऐसे अवसर बढ़ते जायंगे।

—यंग इंडिया : २४-१-'२६

: ६५ :

राष्ट्रीय भावना

विद्यार्थियों या शिक्षकों के दिमाग़ को दरबों में बंद नहीं किया जाना चाहिये। शिक्षक या राज्य जिस बात को सबसे अच्छा समझे उसकी ओर शिक्षक केवल संकेत कर सकते हैं। इतना कर लेने के बाद उन्हें अपने शिष्यों के विचारों और भावनाओं को दबाने का कोई अधिकार नहीं। इसका यह मतलब नहीं कि उन पर कोई अनुशासन ही नहीं लागू होना चाहिये। इसके बिना तो कोई भी स्कूल नहीं चल सकता। लेकिन अनुशासन का विद्यार्थी के चौतरफ़ा विकास पर रोक लगाने से कोई संबंध नहीं। जहाँ विद्यार्थियों से खुफ़िया-गीरी करायी जाती है वहां अनुशासन नहीं संभव। असलियत यह है कि अब तक ये लोग ऐसे वाता-वरण में रहे हैं जो खुल कर तो नहीं लेकिन बड़ी बारीकी के साथ भीतर ही भीतर राष्ट्र-विरोधी रहा है। विद्यार्थियों को यह मालूम होना चाहिये

कि राष्ट्रीय भावना का विकास कोई अपराध नहीं बल्कि अच्छाई है।

—*हरिजन : १८-९-१९३७*

: ६६ :

राजनीतिक हड़तालें

मैंने विद्यार्थियों की वाणी और गति पर से पाबन्दियां हटा लेने की वकालत तो की है, लेकिन मैं राजनीतिक हड़तालों या प्रदर्शनों का समर्थन नहीं कर सकता।[1] विद्यार्थियों को राय बनाने और प्रगट करने की अधिक से अधिक आज़ादी होनी चाहिये। वे जिस राजनीतिक दल को पसन्द करते हों, उसके साथ वे खुले तौर पर हमदर्दी रख सकते हैं। परन्तु मेरी राय में वे जब तक पढ़ते हैं, तब तक उन्हें कार्य की आज़ादी नहीं हो सकती। विद्यार्थी राजनीति में सक्रिय भाग भी लें और साथ ही अध्ययन भी जारी रखें, यह नहीं हो सकता।

---

[1] "मेरा विचार है कि विद्यार्थियों और छात्रों द्वारा ख़ास-ख़ास मौक़ों को छोड़ कर की जाने वाली हड़तालों के विरोध में काफ़ी लिखा है। मैं इस बात को बिलकुल ग़लत मानता हूं कि विद्यार्थी लोग राजनीतिक दर्शनों और दल-बन्दी में भाग लें। ऐसी उत्तेजना गंभीर अध्ययन में रुकावट डालती है और भावी नागरिक की हैसियत से ठोस काम कर सकने के लायक़ नहीं बनने देती।"

—*हरिजन : १५-१०-१९३८*

बड़ी राष्ट्रीय उथल-पुथल के समय कड़े नियम बनाना कठिन होता है।उस समय वे हड़ताल नहीं करते, या 'हड़ताल' शब्द ऐसे हालात में इस्ते-माल किया जा सकता हो तो वह पूरी हड़ताल होती है; उसमें अध्ययन स्थगित कर दिया जाता है। इस प्रकार जो बात अपवाद मालूम होती है वह असल में अपवाद नहीं है।

—हरिजन : २-१०-१९३७

: ६७ :

हड़ताल करने का अधिकार

यदि छात्रों को अपने अध्यापकों के विरुद्ध कोई वास्तविक शिकायत है, तो उन्हें हड़ताल करने और अपने स्कूल या कालेज पर धरना देने तक का अधिकार हो सकता है। परन्तु इसी हद तक कि अनजान छात्रों को कक्षाओं में जाने से शिष्टता-पूर्वक सचेत कर दिया जाय। यह काम वे भाषण देकर या परचे बांटकर भी कर सकते हैं। परन्तु वे रास्ता रोकने की[1] या जो लोग हड़ताल नहीं करना चाहते उन पर कोई दबाव डालने की हरकत नहीं कर सकते।

---

[1] "अवश्य ही, यदि कोई मेरे घर का रास्ता रोकता है तो उसकी कार्रवाई उतनी ही हिंसक है जितनी मुझे अपने द्वार से धक्का देकर हटाने की होगी।"

—हरिजन : ४-३-'३९

मैं उस पुरानी परम्परा का हूं, जो अध्यापकों की पूजा में विश्वास रखती है। मैं यह तो समझ सकता हूं कि जिस पाठशाला के शिक्षकों के प्रति मुझ में आदर-भाव न हो उसमें मैं न जाऊं। परन्तु अपने शिक्षकों का अनादर या निन्दा करने की बात मेरी समझ में नहीं आती। ऐसा आचरण अभद्र है, और सभी प्रकार की अभद्रता हिंसा है।

—हरिजन : ४-३-'३९

: ६८ :

विद्यार्थी और दलबन्दी की राजनीति

मेरा विद्यार्थियों पर और विद्यार्थियों का मुझ पर विशेष अधिकार है। इसका एक वजह तो यह है कि मैं अपने को आज भी एक विद्यार्थी ही मानता हूं। दूसरे भारत लौटने के बाद से ही मैं विद्यार्थियों के गहरे संपर्क में रहा हूं और उनमें से बहुतों ने तो सत्याग्रह में भी भाग लिया है। इसलिये अगर क्षणिक समस्याओं को ले कर सारे के सारे विद्यार्थी मेरी बात का उल्लंघन करें तो भी मैं इस डर से उन्हें सलाह देने से पीछे नहीं हटूंगा कि कहीं वे मेरी बात फिर न मानें।

विद्यार्थियों का दलगत राजनीति में पड़ने से काम नहीं चल सकता। जैसे वे सब प्रकार की

पुस्तकें पढ़ते हैं, वैसे सब दलों की बात सुन सकते हैं। परन्तु उनका काम यह है कि सबकी सचाई को हज़म करें और बाक़ी को फेंक दें। यही एक मात्र उचित रवैया है जिसे वे अपना सकते हैं।

सत्ता की राजनीति विद्यार्थी-संसार के लिये अपरिचित होनी चाहिये। वे ज्यों ही इस तरह के काम में पड़ेंगे, त्यों ही वे विद्यार्थी के पद से च्युत हो जायेंगे और इसलिये देश के संकटकाल में उसकी सेवा करने में असफल होंगे। इसलिय विद्यार्थियों को मेरी सलाह मानने से इनकार करने के पहले पचास बार सोचना चाहिये।

—प्रेस वक्तव्य : २६-१-'४१

: ६९ :

विद्यार्थियों के लिए ११-सूत्रीय सुझाव

मैंने उनके (विद्यार्थियों के) साथ सदा गहरा सम्पर्क रखा है। वे मुझे जानते हैं और मैं उन्हें जानता हूं। उन्होंने मुझे सेवा दी है। बहुत से भूतपूर्व कालेज-छात्र मेरे आदरणीय साथी हैं। मैं जानता हूं कि वे भविष्य की आशा हैं। असहयोग के वैभव काल में उन्हें अपने स्कूल-कालेज छोड़ने का निमंत्रण दिया गया था। कुछ अध्यापक और विद्यार्थी, जिन्होंने कांग्रेस की पुकार का जवाब

दिया था, अभी तक उस पर डटे हुए हैं और उन्होंने अपना और देश का बड़ा लाभ किया है।

लेकिन अनुभव से मालूम हुआ है कि हालांकि आजकल की शिक्षा का सारा आकर्षण झूठा और बनावटी है, फिर भी हमारे देश का नौजवान उससे बच नहीं पाता। कालेज की शिक्षा से अच्छी नौकरियां मिल सकती हैं। धनी-मानी लुभावनी दुनिया में प्रवेश पाने का यह पासपोर्ट है। इस प्रचलित गन्दगी से गुज़रे बिना ज्ञान की भूख नहीं बुझायी जा सकती। एक ऐसी विदेशी भाषा का ज्ञान पाने में, जिसने मातृ-भाषा का स्थान हड़प लिया है, जीवन के अमूल्य हिस्से को गंवा देने की विद्यार्थियों को कोई चिन्ता नहीं होती। इस पाप को वे कभी अनुभव नहीं कर पाते। उन लोगों और उनके शिक्षकों ने यह मान लिया है कि आधुनिक विचार और आधुनिक विज्ञानों की जानकारी हासिल कर पाना देशी भाषाओं से संभव ही नहीं। मुझे अचम्भा है कि जापानी लोग कैसे कर रहे हैं। क्योंकि मेरा ख्याल है कि उनकी शिक्षा जापानी में ही दी जाती है। चीन का तानाशाह (च्यांग काई शेक) कम से कम अंग्रेज़ी को तो नाम मात्र को ही जानता है।

विद्यार्थियों को आमंत्रण

लेकिन विद्यार्थी जैसे भी हों, उन्हीं नौजवान लड़के-लड़कियों के बीच से राष्ट्र के भावी नेता जन्म लेंगे। दुर्भाग्य से उनपर हर तरह के असर पड़ते हैं। अहिंसा में उन्हें कोई आकर्षण नहीं

मिलता। यह बात जल्द समझ में आ जाती है कि ईंट का जवाब ईंट या पत्थर से दिया जाना चाहिये। इससे तुरन्त फल मिल जाता दिखता है, वह क्षणिक ही क्यों न हो। यह पाशविक शक्ति की लगातार आजमाइश ही है जिसे हम पशुओं या मनुष्यों की आपसी लड़ाइयों में देखते हैं। अहिंसा का अर्थ समझने का मतलब है धीरज के साथ खोज करना और उससे भी ज़्यादा धीरज और कठिनाई के साथ अमल करना। व्यापक अर्थ में मैं भी विद्यार्थी ही हूं। मेरा विश्वविद्यालय दूसरे विद्यार्थियों से अलग है। उन लोगों को मैं अपने विश्वविद्यालय में आने और मेरी खोज में शामिल होने को हमेशा आमंत्रित करता हूं। मेरी शर्तें ये हैं :

१. विद्यार्थियों को दलबन्दी वाली राजनीति में कभी शामिल न होना चाहिये। विद्यार्थी विद्या के खोजी और ज्ञान की शोध करने वाले हैं, राजनीति के खिलाड़ी नहीं।

२. उन्हें राजनीतिक हड़तालें न करनी चाहिये। विद्यार्थी वीरों की पूजा चाहे करें, उन्हें करनी चाहिये; लेकिन जब उनके वीर जेलों में जायं, या मर जायं, या यों कहिये कि उन्हें फांसी पर लटकाया जाय, तब उनके प्रति अपनी भक्ति प्रगट करने के लिये उनको उन वीरों के उत्तम गुणों का अनुकरण करना चाहिये, हड़ताल नहीं।

३. सब विद्यार्थियों को सेवा के खातिर शास्त्रीय तरीक़े से कातना चाहिये। कताई सम्बन्धी सारे साहित्य का, और उसमें छिपे आर्थिक,

सामाजिक, नैतिक और राजनीतिक सब रहस्यों का, उन्हें अध्ययन करना चाहिये।

४. अपने पहनने-ओढ़ने के लिये वे हमेशा खादी का ही इस्तेमाल करें, और गांवों में बनी चीजों के बदले परदेश की या कलों की बनी वैसी चीज़ों को कभी न बरतें।

५. वन्देमातरम् गाने या राष्ट्रीय झंडा फहराने के मामले में दूसरों पर जबरदस्ती न करें। राष्ट्रीय झंडे के बिल्ले वे ख़ुद अपने बदन पर चाहे लगायें, लेकिन दूसरों को उसके लिये मजबूर न करें।

६. तिरंगे झंडे के सन्देश को अपने जीवन में उतार कर दिल में साम्प्रदायिकता या अस्पृश्यता को न घुसने दें। दूसरे धर्मों वाले विद्यार्थियों और हरिजनों को अपना भाई समझकर उनके साथ सच्ची दोस्ती क़ायम करें।

७. अपने दुःखी-दर्दी पड़ोसियों की सहायता के लिये वे तुरन्त दौड़ जायें, आसपास के गांवों में सफ़ाई का और भंगी का काम करें और गांवों के बड़ी उमर वाले स्त्री-पुरुषों व बच्चों को पढ़ावें।

८. आज हिन्दुस्तानी का जो दोहरा स्वरूप तय हुआ है, उसके अनुसार उसकी दोनों शैलियों और दोनों लिपियों के साथ वे राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी सीख लें, ताकि जब हिन्दी या उर्दू बोली जाय अथवा नागरी या उर्दू लिपि लिखी जाय, तब उन्हें वह नई न मालूम हो।

९. विद्यार्थी जो भी कुछ नया सीखें उस सबको अपनी मातृभाषा में लिख लें, और जब वे

हर हफ़्ते अपने आसपास के गांवों में दौरा करने निकलें, तो उसे अपने साथ ले जायं और लोगों तक पहुंचायें।

१०. वे लुक-छिप कर कुछ न करें, जो करें खुल्लम-खुल्ला करें। अपने हर काम में उनका व्यवहार बिलकुल शुद्ध हो। वे अपने जीवन को संयमी और निर्मल बनायें। किसी चीज़ से न डरें और निर्भय रहकर अपने कमज़ोर साथियों की रक्षा करने में मुस्तैद रहें।

११. अपने साथ पढ़ने वाली विद्यार्थिनी बहनों के प्रति अपना व्यवहार बिलकुल साफ़ और सभ्यता-पूर्ण रखें।

ऊपर विद्यार्थियों के लिये मैंने जो कार्यक्रम सुझाया है, उस पर अमल करने के लिये उन्हें वक़्त निकालना होगा। मैं जानता हूं कि वे अपना बहुत-सा समय यों ही बरबाद कर देते हैं। अपने वक़्त की सख़्त बचत करके वे मेरे द्वारा सुझाये गये कामों के लिये कई घण्टों का समय निकाल सकते हैं। लेकिन किसी भी विद्यार्थी पर मैं बेजा बोझ लादना नहीं चाहता। चुनांचे देश से प्रेम रखने वाले विद्यार्थियों को मेरी यह सलाह है कि वे अपने अभ्यास के समय में से एक साल का समय इस काम के लिये अलग निकालें। मैं नहीं कहता कि एक ही बार में वे सारा साल दे दें। मेरी सलाह यह है कि वे अपने समूचे अभ्यासकाल में इस साल को बांट लें, और थोड़ा-थोड़ा करके पूरा करें। उन्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस तरह बिताया हुआ साल व्यर्थ नहीं गया। इस समय में

की गई मेहनत के ज़रिये वे देश की आज़ादी की लड़ाई में अपना ठोस हिस्सा अदा करेंगे, और साथ ही अपनी मानसिक, नैतिक और शारीरिक शक्तियां भी बहुत-कुछ बढ़ा लेंगे।

—रचनात्मक कार्यक्रम : १९४५

: ७० :

पढ़ाई पूरी करने के बाद क्या ?

प्र०—एक विद्यार्थी ने गंभीरतापूर्वक यह प्रश्न पूछा है: "अपनी पढ़ाई समाप्त करके मैं क्या करूं ?"

उ०—आज हम एक पराधीन राष्ट्र हैं और हमारी शिक्षा-प्रणाली हमारे शासकों के हित-साधन के लिये तैयार की गयी है। परन्तु जैसे किसी अत्यन्त स्वार्थी मनुष्य को भी, जिनका शोषण करने पर वह तुला हुआ होता है उनके सामने कोई लालच रखना पड़ता है, वैसे ही हमारे शासकों ने उनकी संस्थाओं में पढ़ने के लिये हमारे सामने बहुत से प्रलोभन रख दिये हैं। इसके अलावा, सरकार के सभी सदस्य एक से नहीं हैं। उनमें कुछ लोग उदार मन वाले हैं, जो शिक्षा की समस्या पर उचित-अनुचित की दृष्टि से विचार करते हैं। इसलिये निःसन्देह वर्तमान शिक्षा-पद्धति में भी कुछ अच्छाई है। परन्तु प्रचलित शिक्षा का, हम चाहें या न चाहें, दुरुपयोग किया जाता है—

अर्थात् उसे रुपया और प्रतिष्ठा कमाने का साधन समझा जाता है।

'सा विद्या या विमुक्तये'—यह प्राचीन सूत्र आज भी उतना ही सही है जितना पहले था। विद्या का अर्थ यहां केवल आध्यात्मिक ज्ञान नहीं है, न मुक्ति से यह मतलब है कि मृत्यु के बाद आध्यात्मिक मोक्ष मिल जाय। ज्ञान में वह सारी शिक्षा शामिल है, जो मानव-जाति की सेवा के लिये उपयोगी हो। और मुक्ति का अर्थ वर्तमान जीवन में भी सब प्रकार की गुलामी से छुटकारा पाना है। गुलामी दो तरह की होती है: किसी दूसरे का दास होना और अपनी ही कृत्रिम आवश्यकताओं का दास होना। इस आदर्श की प्राप्ति के लिये प्राप्त किया हुआ ज्ञान ही सच्ची शिक्षा है।

सेवा का आदर्श

जो विद्यार्थी मेरे बताये हुए शिक्षा के आदर्श से ऊपरी तौर पर आकर्षित होकर अपनी पढ़ाई छोड़ देता है, संभव है उसे आगे चलकर अपने किये पर पश्चात्ताप करना पड़े। इसलिये मैंने एक अधिक सुरक्षित मार्ग सुझाया है। जिस संस्था में वह भरती हो गया है, उसमें अपनी पढ़ाई जारी रखते हुए उसे मेरे बताये हुए सेवा के आदर्श को सदा सामने रखना चाहिये और अपनी पढ़ाई का उपयोग उस आदर्श की पूर्ति के लिये करना चाहिये, रुपया कमाने के लिये कभी नहीं। इसके सिवा, उसे वर्तमान शिक्षा की कमी को अपना अवकाश का समय उस आदर्श की सिद्धि में लगाकर पूरा

करना चाहिये। इसलिये रचनात्मक कार्यक्रम में भाग लेने का उसे जो भी अवसर मिलेगा, उससे वह अधिक से अधिक लाभ उठायेगा।

—*हरिजन : १०-३-'४६*

: ७१ :

शिक्षा का सांस्कृतिक पहलू

मैं शिक्षा के साहित्यिक पहलू से सांस्कृतिक पहलू को अधिक महत्त्व देता हूं। संस्कृति नींव है, वह पहली चीज़ है, जो लड़कियों को यहां से मिलनी चाहिये। वह तुम्हारे चरित्र और व्यक्तिगत व्यवहार की छोटी से छोटी बात में भी प्रगट होनी चाहिये। तुम्हारे बैठने, उठने, चलने, कपड़े पहनने वग़ैरा के ढंग से एक ही नज़र में हर किसी को यह लगना चाहिये कि तुम इस संस्था से निकली हो। तुम्हारी बोली में, आने वालों और अतिथियों के साथ व्यवहार करने के तुम्हारे तरीक़े में और आपस में तथा अपने शिक्षकों और बुज़ुर्गों के प्रति तुम्हारे बरताव में भीतरी संस्कृति का प्रतिबिम्ब पड़ना चाहिये।

मुझे इस बात से भी ख़ुशी हुई कि जब तुम मुझसे मिलने आयीं, तब भंगी-निवास के सारे रास्ते पैदल आईं और गईं। परन्तु यदि तुम मुझे ख़ुश करने को ही पैदल चली हो, तो तुम्हारे कष्ट-सहन में कोई तारीफ़ की बात नहीं थी। इससे

तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। तुम्हें सवारी काम में लेने के बजाय पैदल चलने का नियम बना लेना चाहिये। लाखों के लिये मोटरगाड़ी नहीं है। इसलिये तुम उसे छोड़ दो। लाखों तो रेलयात्रा भी नहीं कर सकते। उनका गांव ही उनकी दुनिया है। यह बहुत छोटी बात है। परन्तु यदि तुम इस नियम का सचाई से पालन करोगी, तो इससे तुम्हारा सारा जीवन बदल जायगा और उस माधुर्य से भर जायगा, जो स्वाभाविक सादगी में होता है।

—*हरिजन : ५-५-'४६*

: ७२ :

विद्यार्थियों को इंग्लैंड भेजने का सवाल

प्रश्न—पुरानी पीढ़ी के सबसे अच्छे लोगों की शिक्षा इंग्लैंड में हुई थी, उदाहरण के लिये आपकी ही। क्या भारत के आज़ाद हो जाने के बाद भी आप इस देश की संतानों को पहले ही की तरह शिक्षा के लिये इंग्लैंड भेजने का समर्थन करेंगे?

उत्तर—नहीं, आज भी नहीं। मैं तो यह राय दूंगा कि उन्हें कम से कम ४० वर्ष बाद वहां भेजना शुरू करें।

प्रश्न—इसका मतलब हुआ दो पीढ़ियों को

पश्चिम के सम्पर्क से होने वाले लाभ से वंचित रखना।

उत्तर—दो पीढ़ियां क्यों? ४० साल या ६० साल भी एक व्यक्ति के जीवन में भी बहुत ज़्यादा नहीं होता। अगर रहन-सहन ठीक हो तो ६० साल की आयु में हमें बूढ़ा नहीं हो जाना चाहिये जैसा कि दुर्भाग्य से हमारे देश में होता है। मैं फिर से कहना चाहता हूं कि प्रौढ़ हो जाने के बाद ही विद्यार्थियों को वहां जाना चाहिये। क्योंकि अपनी संस्कृति की अच्छाइयों को समझ लेने के बाद ही वे इंग्लैंड या अमेरिका से जो कुछ अच्छी चीज़ें मिलनी हैं, उन्हें पचा सकेंगे। मेरी ही तरह सत्रह साल के एक लड़के की कल्पना कीजिये जो इंग्लैंड जाता है—वह बेचारा तो बिलकुल बह जायगा।

—*हरिजन : २३-६-'४६*

: ७३ :

विदेश-गमन

एक भारतीय डॉक्टर नाड़ियों से सम्बन्ध रखने वाली शल्य-विद्या (न्यूरो-सर्जरी) सीखने अमेरिका गये ताकि लौट कर अपने यहां के लोगों की सेवा कर सकें। उन्हें कोलम्बिया विश्वविद्यालय में मुश्किल से स्थान मिला है और वे वहां हाउस सर्जन का काम कर रहे हैं।

वे मुझे लिखते हैं कि मैं विद्यार्थियों पर प्रभाव डालकर उन्हें विदेश-गमन से मना करूं। उन्होंने ये कारण बताये हैं :

"(क) हमारा ग़रीब मुल्क दस विद्यार्थियों को विदेश भेजकर तालीम दिलाने में जितना रुपया खर्च करता है, उसका बेहतर उपयोग यह होगा कि किसी प्रथम श्रेणी के अध्यापक की सेवायें प्राप्त कर ली जायं। वह ४० विद्यार्थियों को तालीम देगा और प्रयोगशाला भी तैयार कर देगा।

(ख) जो विद्यार्थी यहां आते हैं, उन्हें खोज का बुनियादी ज्ञान तो मिल जाता है, परन्तु वे यह नहीं जानते कि घर लौट कर प्रयोगशाला कैसे तैयार की जाय।

(ग) उन्हें सतत कार्य का अवसर नहीं मिलता।

(घ) यदि हम विशेषज्ञ तैयार करें तो हमारी प्रयोगशालायें भी संपूर्ण बन जायं।"

मैं हमारे विद्यार्थियों के विदेश-गमन का कभी समर्थक नहीं रहा हूं। मेरा अनुभव मुझे कहता है कि ऐसे लोग लौटने पर गोल छेदों में चौकोर खूंटियों की तरह होते हैं। वही अनुभव सबसे क़ीमती और विकास का साधक होता है जो स्वदेश में मिलता है। परन्तु आज तो विद्यार्थियों पर विलायत जाने का भूत सवार है। भगवान करे कि उद्धृत अंश चेतावनी का काम दे!

—हरिजन : ८-६-'४६

: ७४ :

विद्यार्थी-संघ

इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दू, मुसलमान और अन्य सब विद्यार्थियों का मिलकर एक राष्ट्रीय संगठन होना चाहिये। विद्यार्थी भविष्य के निर्माता हैं। उनका विभाजन नहीं किया जा सकता। मुझे दुःख है कि न तो विद्यार्थियों ने स्वयं अपने लिये विचार किया और न नेताओं ने उन्हें पढ़ाई के लिये स्वतंत्र छोड़ा, ताकि वे अच्छे नागरिक बन सकें। खराबी विदेशी हुकूमत से शुरू हुई। हम उत्तराधिकारियों ने भूतकाल की भूलों को ठीक करने का कष्ट नहीं किया। और भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों ने विद्यार्थियों को इस तरह पकड़ना चाहा मानो वे कोई मछलियों के झुण्ड हों। और विद्यार्थी मूर्ख बनकर अपने लिये फैलाये गये जाल में फंस गये।

इसलिये विद्यार्थियों के किसी भी संगठन के लिये यह काम हाथ में लेना भगीरथ कार्य है। परन्तु उनमें वीरता की भावना होनी चाहिये, जिससे कि वे इस काम से पीछे नहीं हटें। उसका कार्यक्षेत्र यह होगा कि सबको मिलाकर एक कर दे। यह काम वे तभी कर सकते हैं जब वे क्रियात्मक राजनीति से दूर रहना सीख लें। विद्यार्थी का धर्म यह है कि जिन विविध समस्याओं के हल होने की आवश्यकता है, उनका अध्ययन करे। कर्म करने का समय उसके लिये

तब आता है जब वह अपनी पढ़ाई पूरी कर लेता है।

क्रियात्मक राजनीति

उन्हें क्रियात्मक राजनीति से अलग रहना ही चाहिये। यह देश के इकतरफ़ा विकास की निशानी है कि सब दलों ने विद्यार्थी-जगत् का अपने-अपने मतलब से उपयोग किया है। यह शायद उस सूरत में अनिवार्य था जब शिक्षा का मक़सद ऐसे ग़ुलामों की नस्ल पैदा करना था जो अपनी दासता से चिपटे रहना चाहें। आशा है वह काम ख़त्म हो गया। विद्यार्थियों का पहला काम है विचार करके यह मालूम करना कि स्वतंत्र राष्ट्र के बच्चों को कैसी शिक्षा मिलनी चाहिये। आजकल की शिक्षा तो प्रत्यक्ष ही वैसी शिक्षा नहीं है। मुझे इस प्रश्न की चर्चा नहीं करनी है कि वह शिक्षा कैसी हो। इतनी ही बात है कि उन्हें यह विश्वास करके अपने को धोखा नहीं देना चाहिये कि यह काम विश्वविद्यालय की प्रबन्धकारिणी के बुज़ुर्गों का ही है। उन्हें विचार करने की शक्ति को उत्तेजन देना चाहिये। मेरा यह ज़रा भी सुझाव नहीं है कि विद्यार्थी हड़तालें वग़ैरा करके ज़बरदस्ती ऐसी स्थिति ला सकते हैं। उन्हें रचनात्मक और ज्ञानपूर्ण आलोचना करके लोकमत पैदा करना होगा। प्रबन्ध-सभा के सदस्य पुरानी विचारधारा में पले होने के कारण धीरे-धीरे चलते हैं। पर सही जागृति की जाय तो उन पर ज़रूर असर हो सकता है।

—*हरिजन : १७-८-'४७*

: ७५ :

राष्ट्रीय सेवा

"आजकल अधिकांश विद्यार्थी राष्ट्रीय सेवा में दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं। उनमें बहुत से ऐसी आदतें सीख रहे हैं, जिन्हें वे पश्चिम की फ़ैशन समझते हैं और अधिकाधिक विद्यार्थी शराबख़ोरी वग़ैरा की कुटेवों के शिकार हो रहे हैं। कार्यदक्षता बहुत कम है और स्वतंत्र विचार करने की इच्छा भी थोड़ी ही है। हम इन सब समस्याओं को हल करना चाहते हैं और युवकों में चरित्र, अनुशासन और कार्यदक्षता पैदा करना चाहते हैं। आपके ख़्याल में हम यह कैसे कर सकते हैं?"

इन सब बातों का सम्बन्ध मौजूदा बीमारी से है। जब शांत वातावरण पैदा हो जायगा और विद्यार्थी आन्दोलनकारी न रहकर गंभीरतापूर्वक अध्ययन में लग जायेंगे तब यह बीमारी मिट जायगी। विद्यार्थी-जीवन की उपमा संन्यासी[1]

---

[1] "जहां तक मैं जानता हूं हिन्दू धर्म तो यह मानता है कि जब तक उसकी पढ़ाई ख़त्म न हो जाय, तब तक विद्यार्थी का जीवन संन्यासी के जीवन जैसा होना चाहिये। उसे अत्यन्त कठोर अनुशासन में रहना चाहिये। उसका आचरण आदर्श आत्म-संयम का होना चाहिये। यदि वे उस आदर्श पर कुछ भी चलते होते, तो प्रार्थना-सभा में उन्होंने जो कुछ किया वह न करते।"

—*हरिजन : ७-९-'४७*

जीवन से ठीक ही दी गई है। विद्यार्थी को सादा जीवन और उच्च विचारों की मूर्ति बनना ही चाहिये। उसे अनुशासन का अवतार होना चाहिये। उसे अपने अध्ययन से ही सुख मिलना चाहिये। जब अध्ययन विद्यार्थियों के लिये ज़बरदस्ती लादा गया बोझ नहीं रहता, तब उससे अवश्य सच्चा सुख मिलता है। विद्यार्थी तेज़ी से अधिकाधिक ज्ञानप्राप्ति करता चला जाय, इससे अधिक सुख और क्या हो सकता है?

—*हरिजन : १७-८-'४७*

***